ISSN No. 2582-9548

nbt.india
एकः सूते सकलम्

पुस्तक संस्कृति

साहित्य और संस्कृति की द्विमासिकी

वर्ष—7 ◆ अंक-6 ◆ नवंबर- दिसंबर 2022 ◆ मूल्य ₹40.00

- पीड़ा का पर्याय गिरमिटिया परंपरा
- चंद्रशेखर आजाद : विलक्षण व्यक्तित्व
- गांधी पर मीरा का प्रभाव
- सत्येंद्रनाथ बोस और मातृभाषा में विज्ञान
- वीरांगना नीरा आर्या
- वजीर अली का क्रांति–संघर्ष

CSIR CRRI

सीएसआईआर–केंद्रीय सड़क अनुसंधान संस्थान

(आईएसओ प्रमाणित आरएंडडी प्रयोगशाला)

राजभाषा गृह पत्रिका "सड़क दर्पण"

राजभाषा हिंदी का प्रचार एवं जन-मानस में वैज्ञानिक चेतना का प्रसार

- वैज्ञानिक तथा तकनीकी लेख
- जनमानस के लिए लोक रूचि के विषय
- संस्थान की विभिन्न गतिविधियों की जानकारी
- संस्थान के अनुसंधान और विकास (आरएंडडी) संबंधित जानकारी
- विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विविध पहलु
- हिंदी में साहित्यिक अभिव्यक्ति
- समसामयिक जानकारी

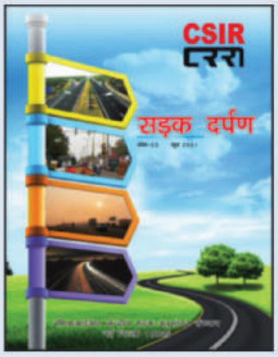

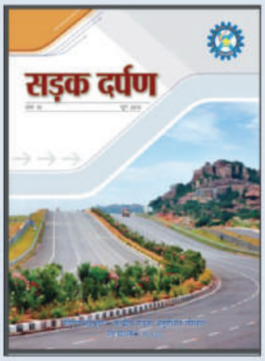

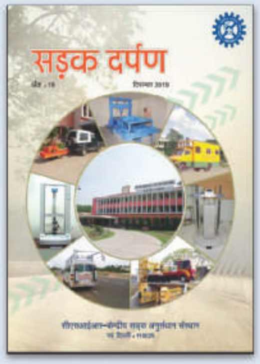

संपर्क -

संपादक, ‘सड़क दर्पण’

राजभाषा अनुभाग, सीएसआईआर-केंद्रीय सड़क अनुसंधान संस्थान

दिल्ली-मथुरा मार्ग, डाकघर सीआरआरआई, नई दिल्ली-110025

दूरभाष : 26929175, 26831760, 26832325, 26832427/165

ई-पत्रिका का लिंक : **https://www.crridom.gov.in/publications/magazine**

प्रधान संपादक
प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा

संपादक
पंकज चतुर्वेदी

सहायक संपादक
दीपक कुमार गुप्ता

संपादकीय सहयोग
विजय कुमार, मोहन शर्मा

विज्ञापन एवं प्रसार
कंचन वांचु शर्मा

उत्पादन
अनुज कुमार भारती, पवन दुबे

रेखाचित्र
रोहित शुक्ला

सज्जा/डिजाइन
ऋतुराज शर्मा, समरेश चटर्जी

शब्द संयोजन/कार्यालयीन सहयोग
प्रवीन कुमार

सदस्यता शुल्क
व्यक्तियों के लिए
एक प्रति : ₹ 40.00
वार्षिक : ₹ 225.00
(शुल्क भारत के लिए मान्य)

संपादकीय पत्र-व्यवहार
संपादक
पुस्तक संस्कृति
राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत
पता : नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया
फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070.
फोन : 011-26707876
ई-मेल: editorpustaksanskriti@gmail.com

प्रकाशक व मुद्रक अनुज कुमार भारती द्वारा
नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया (राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत)
नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-II, वसंत कुंज,
नई दिल्ली-110070 के लिए प्रकाशित और
रेक्मो प्रेस प्रा. लि., सी-59, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया
फेज़-I, नई दिल्ली-110020 से मुद्रित।

संपादक
पंकज चतुर्वेदी

सर्वाधिकार सुरक्षित : प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक और प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। प्रकाशित रचनाओं के विचार से प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे।

ISSN NO. 2582–9548

पुस्तक संस्कृति

साहित्य एवं संस्कृति की द्विमासिकी

वर्ष-7; अंक-6; नवंबर-दिसंबर, 2022

इस अंक में

संपादकीय — *प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा* 2
विरासत — **देशवासियो, लड़ते रहो : सुभाष चंद्र बोस**—*विजय शंकर सिंह* 4
आलेख — **पीड़ा का पर्याय गिरमिटिया परंपरा**—*डॉ. अरविंद कुमार सिंह* 8
लेख — **क्रांतिकारी मास्टर अमीरचंद**—*रेनू सैनी* 12
लेख — **चंद्रशेखर आजाद : विलक्षण व्यक्तित्व**—*ए.के. गांधी* 15
यात्रा वृत्तांत — **गौरवगाथा : विजयनगर साम्राज्य और उसकी राजधानी हम्पी**—*हेमा जोशी* 18
आलेख — **बुंदेलखंड के विस्मृत शहीद : नारायण दास खरे**—*डॉ. नरेंद्र अरजारिया* 22
लेख — **सत्येंद्रनाथ बोस और मातृभाषा में विज्ञान**—*डॉ. शुभ्रता मिश्रा* 24
आलेख — **वीरांगना नीरा आर्या**—*सूर्यकांत शर्मा* 27
लेख — **बंगाल के बाउल**—*डॉ. रामचन्द्र राय* 29
शब्द ज्ञान — **आओ भारतीय भाषाएँ सीखें** 32
आलेख — **वजीर अली का क्रांति-संघर्ष**—*डॉ. रजत शर्मा* 34
लेख — **गांधी पर मीरा का प्रभाव**—*डॉ. महीपाल सिंह राठौड़* 37
लेख — **अंग्रेजों ने झारखंड में वृक्षों को बनाया था फाँसी घर**—*मनोज कुमार कपरदार* 39
आलेख — **साहित्य का पेड़ और किताब वाली आंटी**—*कमलेश पाण्डेय 'पुष्प'* 41
आलेख — **असहयोग आंदोलन के प्रथम जेलयात्री : महर्षि सदाफल देव महाराज**—*निरंकार सिंह* 43
लेख — **नेताजी सुभाष चंद्र बोस का अंडमान आगमन**—*डॉ. व्यास मणि त्रिपाठी* 45
पुस्तक समीक्षा 48
साहित्यिक गतिविधियाँ 62
पुस्तकें मिलीं 64

प्रकाशन उद्योग और पुस्तक संस्कृति

आधुनिक सभ्यता के निर्माण और विकास में प्रकाशन उद्योग की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। प्रकाशन उद्योग को इस बात का श्रेय जाता है कि उसने सदैव ही नए ज्ञान से विश्व को परिचित कराने का कार्य किया है। इस विचार और कथन में भी सच्चाई है कि यदि प्रकाशन का कार्य विश्व में प्रारंभ न होता तो मानव विकास और सामाजिक रूपांतरण की गति बहुत धीमी होती। आज विश्व जिस गति से नई उपलब्धियों से परिचित हो रहा है तथा उन्हें आत्मसात कर रहा है, उसमें प्रकाशन उद्योग की महती भूमिका है।

मानव इतिहास में कुछ ऐसी खोजें और आविष्कार हुए हैं जिनके कारण मानव जीवन में मूलभूत अंतर आया है। इसमें पहिए की खोज प्रमुख है, जिसने मनुष्य की गतिशीलता में वृद्धि की है। गति के क्षेत्र में उसने मनुष्य के जीवन को और समाज को सकारात्मक रूप से प्रभावित किया और बदला भी। यह पहिए की खोज का ही परिणाम है कि दूर-दराज तक तेजी से चलना सहज हो पाया और आज हम इस स्थिति तक पहुँच सके। पहिया गति का प्रतीक बन गया, इसी प्रकार आग जलाने की खोज ने मनुष्य जीवन को नया रूप दिया। दो पत्थरों की रगड़ से पैदा हुई चिनगारी मानव संस्कृति के विकास का बहुत बड़ा कारण बनी। खान-पान के तरीके ही नहीं, जीवन का पूरा क्रम बदल गया। ऊर्जा हमारे जीवन का आधार बनी, जिसने हमें आज इस स्थिति में पहुँचा दिया।

मानव सभ्यता के इतिहास में उस समय बुनियादी अंतर आया जब मनुष्य ने खेती करना प्रारंभ किया। पहली बार जब हमारे किसी पुरखे ने खेती के लिए हल जैसी नुकीली चीज का प्रयोग कर धरती को चीरा होगा तब उसने नहीं सोचा होगा कि वह एक क्रांति को जन्म दे रहा है, जो मनुष्य के जीवन को बदलने वाली और उसमें स्थिरता लाने वाली है। खेती के कारण मनुष्य का खानाबदोश जीवन समाप्त हुआ। वह एक स्थान पर अपना आवास बनाकर रहने लगा। परिवार संस्था का विकास हुआ और मनुष्य का जीवन के प्रति आकर्षण, लगाव और परस्पर मोह विकसित हुआ। यही स्थिति औद्योगिक क्रांति और अभी हाल ही में तेजी के साथ विकसित सूचना और तकनीकी क्रांति के कारण निर्मित हुई है। इन क्रांतियों ने मानव जीवन को एक नया अर्थ और रूप दिया है। मनुष्य में आत्मविश्वास बढ़ा है और वह अपने आपको समुन्नत प्राणी मानता है।

इसी प्रकार सामाजिक रूपांतरण में तथा मानव ज्ञान को संरक्षित करने और उसे विस्तार देने में छपाई की विधि ने निर्णायक भूमिका का निर्वहन किया है। छपाई क्रांति को शांत और मानव ज्ञान को संरक्षित करने वाली महान क्रांति के रूप में देखा जा सकता है। यदि प्रकाशन (छपाई) का आविष्कार न हुआ होता तो न जाने कितने श्रेष्ठ, युग परिवर्तनकारी और विकासशील विचार व्यक्ति अथवा एक पीढ़ी तक सीमित रह जाते और समय के साथ समाप्त भी हो जाते। प्रकाशन उद्योग ने व्यक्ति के विचारों, उसके चिंतन और उसके तत्व ज्ञान को स्थायित्व प्रदान किया है।

मनुष्य के विचारों को श्रुति परंपरा के दायरे से निकालकर पुस्तकाकार रूप में समाज के सम्मुख लाने तथा उसे शताब्दियों तक समाज में सुरक्षित रखने के लिए प्रकाशन उद्योग द्वारा किया गया कार्य महान है। पुस्तक प्रकाशित कर हजारों पाठकों के लिए सहज उपलब्ध कराने का कार्य अपने आप में बहुत बड़ी क्रांति है।

एक बात और, पुस्तकें लोकतंत्र का पर्याय हैं। जिस तरह लोकतंत्र प्रत्येक व्यक्ति को अपनी विचारधारा, अपने प्रतिनिधि आदि को चुनने का विकल्प उपलब्ध कराता है, पुस्तकें भी विषय, विचार, लेखक, दृष्टिकोण आदि के व्यापक विकल्प उपलब्ध कराती हैं। प्रकाशन और पुस्तकों की व्यापकता और वैविध्यता वास्तव में लोकतंत्र को समृद्ध, संपन्न और सशक्त करते हैं।

निश्चित रूप से छपाई (प्रकाशन) का कार्य पवित्र और मानव हितकारी है। इसकी शक्ति अपार है। पुस्तकें न होतीं तो कई युग परिवर्तनकारी विचारकों, समाजशास्त्रियों, दार्शनिकों एवं वैज्ञानिकों के विचार ओझल हो जाते। वैज्ञानिक और शोध प्रभावित होते। हम आज जिसे विश्व साहित्य कहते हैं, वह कभी भी अपने वर्तमान स्वरूप को प्राप्त नहीं होगा। प्रकाशन उद्योग ने ज्ञान की सीमाओं का विस्तार किया है तथा उसे जन-जन तक पहुँचाने का कार्य किया है। सोचिए, प्रकाशन कार्य न होता तो वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत, गीता जैसे ग्रंथ जनमानस की पहुँच से कितने दूर रहते तथा उनका प्रभाव कितना सीमित होता। यह भी विचारणीय है कि वे अपने मूल रूप में

कब तक रहते। वस्तुतः श्रुत परंपरा की पहुँच प्रकाशित साहित्य की तुलना में सीमित है। प्रकाशन एक विचार को ज्यों-का-त्यों सदैव के लिए सुरक्षित रखता है।

प्रारंभिक अवस्था में भारत में पुस्तक प्रकाशन का कार्य व्यापार की दृष्टि से प्रारंभ नहीं हुआ था। (भारतीय पुस्तक प्रकाशन के 60 वर्ष, पृ.सं. 11) पुस्तक प्रकाशन का उद्देश्य राष्ट्रीय विचारों के प्रसार और राजनेताओं द्वारा लिखी क्रांतिकारी पुस्तकों को प्रकाशित करना था, ताकि भारतीयों में स्वतंत्रता की भावना का संचार हो। (वही, पृ.सं. 11)

निश्चित रूप से यह साहसिक और खतरों से भरा कार्य था। यह कार्य वही कर सकता था जो राष्ट्रभाव से ओत-प्रोत हो और जिसे अपने जीवन का मोह न हो। उस समय इन समर्पित प्रकाशकों पर मुकदमे चलाए जाते थे। उन्हें सलाखों के पीछे डाला जाता था और उनके प्रेस को भी सरकारी कब्जे में ले लिया जाता था। उन पर ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ विद्रोह पैदा करने जैसे आरोप लगाए जाते थे। (भारतीय पुस्तक प्रकाशन के 60 वर्ष (1948-2008), पृ.सं. 11) पुस्तक प्रकाशन के इस साहसिक कार्य के लिए समर्पित उस समय के निडर और साहसी व्यक्तियों और प्रतिष्ठानों पर आज शोध की आवश्यकता है, ताकि उनके साहसिक कार्य समाज तक आ सकें।

प्रकाशनों ने जिन पुस्तकों का प्रकाशन किया, उनमें ऐसी भी पुस्तकें थीं जिनके कारण ब्रिटिश सत्ता में बेचैनी और डर पैदा हुआ था। फलतः इन पुस्तकों को प्रतिबंधित भी किया गया। उदाहरण के लिए, विनायक दामोदर सावरकर द्वारा लिखित पुस्तक '1857 का स्वतंत्रता समर' ऐसी ही पुस्तक है, जिसे प्रकाशित होने के पूर्व ही प्रतिबंधित किया गया। इसका पहला संस्करण जो हॉलैंड में छपा, वह पेरिस होते हुए भारत पहुँचा तथा भारत में पुस्तक के प्रतिबंध के बावजूद उसके कई भाषाओं में गुप्त तरीके से अनुवाद प्रकाशित हुए।

सुंदरलाल द्वारा लिखित पुस्तक 'भारत में अंग्रेजी राज' (दो खंड) को मार्च-1929 में जो उसके प्रकाशन का वर्ष था, प्रतिबंधित किया गया। महात्मा गांधी द्वारा लिखित पुस्तक 'हिंद स्वराज' को भी प्रतिबंधित किया गया। इसी प्रकार सुभाषचंद्र बोस द्वारा लिखित पुस्तक 'द इंडियन स्ट्रगल 1920-1934' का प्रकाशन यद्यपि वियना में सन् 1935 में हुआ, तथापि इस पुस्तक पर भारत में प्रवेश पर प्रतिबंध लगाया गया। ऐसी और भी अनेक पुस्तकें हैं। निश्चित रूप से प्रकाशन उद्योग ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को धारदार बनाने में अहम भूमिका का निर्वहन किया है।

प्रकाशन उद्योग के कारण विश्व में पुस्तक संस्कृति का विकास हुआ है। पहले पुस्तकें प्रायः प्रबुद्धजन तक सीमित थीं, जो हस्तलिखित थीं, पर आज पुस्तकें सामान्य जन तक पहुँच चुकी हैं। यह प्रकाशन उद्योग का ही प्रभाव है कि आज पुस्तकों के संसार में हर विषय पर पुस्तकें उपलब्ध हैं। आयु वर्ग की दृष्टि से बाल-साहित्य से लेकर प्रौढ़ साहित्य तक उपलब्ध हैं, साथ ही अभिरुचियों के आधार पर भी।

भारत बहुभाषी समाज है, यहाँ 22 भारतीय भाषाओं को संवैधानिक मान्यता मिली है। इसके अतिरिक्त अंग्रेजी को भी मान्य किया गया है। बोलियाँ भी अनेक हैं। प्रकाशन की दृष्टि से आज देश में सभी भाषाओं में प्रचुर मात्रा में पुस्तकें उपलब्ध हैं। इसी प्रकार कई प्रमुख बोलियों में भी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। बहुभाषा समाज में ज्ञान के आदान-प्रदान के लिए अनुवाद कार्य का अपना महत्व है। अनुवाद के माध्यम से एक भाषा का पाठक वर्ग दूसरी भाषा की श्रेष्ठ पुस्तकों से परिचित होता है। वह उस भाषा के चिंतन प्रवाह को समझ पाता है जो राष्ट्रीय एकता की दिशा में बहुत सहायक है। अनुवाद के माध्यम से अन्य देशों की संस्कृतियों एवं वहाँ के निवासियों के जीवन-मूल्यों, आचार-विचार तथा जीवन पद्धति से परिचित हुआ जाता है। वैश्विक संदर्भ में इनका महत्व है। भारत में अनुवाद कार्य बहुत तेजी से विकसित हो रहा है। 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020' में अनुवाद कार्य के महत्व को स्वीकार किया है।

प्रकाशन क्षेत्र में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत की भूमिका अग्रणी रही है। पुस्तक संस्कृति के विकास और पाठकों को उचित मूल्य पर पुस्तकें उपलब्ध कराने में न्यास कार्यशील है। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास कई पुस्तकमालाओं के अंतर्गत पुस्तकों का प्रकाशन करता है। न्यास 50 से अधिक भाषाओं/बोलियों में प्रकाशन का कार्य कर रहा है। भारतीय भाषाओं में रचित श्रेष्ठ पुस्तकों के अनुवाद के साथ ही विदेशी भाषाओं की श्रेष्ठ पुस्तकों का अनुवाद भी न्यास प्रकाशित करता रहा है। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास प्रतिवर्ष दिल्ली में पुस्तक मेले का आयोजन भी करता है, जो एशिया का सबसे बड़ा पुस्तक मेला है। यह पुस्तक मेला पुस्तक प्रेमियों का महाकुंभ है, जिसमें लाखों की संख्या में पुस्तक प्रेमी, लेखक, विचारक और प्रकाशक भाग लेते हैं।

सभी सभ्यताओं में प्रकाशन उद्योग को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। मानव मूल्यों के विकास में और ज्ञान के विस्तार में प्रकाशन उद्योग की भूमिका अहम है। जब प्रकाशन मशीनों द्वारा नहीं होता था तब भी हाथ से लिखकर श्रेष्ठ रचनाओं को लोगों तक पहुँचाने का कार्य होता था। प्रकाशन में मशीनों के प्रयोग ने इस क्षेत्र में नई क्रांति को जन्म दिया है, जिसने विश्व के पूरे परिदृश्य को बदल दिया। यद्यपि, डिजिटलीकरण के इस युग में ई-बुक की ओर समाज का रुझान बढ़ रहा है, तथापि मशीनों द्वारा छापी गई पुस्तकों का स्थान कोई भी नहीं ले सकता। एक सभ्य समाज में प्रकाशन उद्योग की आवश्यकता सदैव रहेगी।

(प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा)

प्रधान संपादक, **पुस्तक संस्कृति**

देशवासियो, लड़ते रहो
सुभाष चंद्र बोस

बर्लिन, जर्मनी में ही सुभाष बाबू ने यह भाषण 31 अगस्त, 1942 को आजाद हिंद रेडियो (जर्मनी) पर देश को संबोधित करते हुए दिया था। तब भारत छोड़ो आंदोलन पूरी तेजी से चल रहा था और देश के हर हिस्से में फैल गया था। इस भाषण का हिंदी अनुवाद श्री विजय शंकर सिंह ने किया है।

"देशवासियो, लड़ते रहो! मैं, सुभाष चंद्र बोस आज़ाद हिंद रेडियो पर आप को संबोधित कर रहा हूँ!"

"मैं श्री जिन्ना, श्री सावरकर और उन सभी नेताओं से अनुरोध करूँगा जो अभी भी अंग्रेजों के साथ समझौता करने के बारे में सोचते हैं, वे एक बार यह महसूस करें कि कल दुनिया में कोई ब्रिटिश साम्राज्य नहीं होगा। वे सभी व्यक्ति, समूह या दल, जो अब भी उन नेताओं के लिए लड़ाई में भाग लेते हैं, जो अभी भी अंग्रेजों के साथ समझौता करने के बारे में सोचते हैं, क्या भारत में उनका सम्मानजनक स्थान होगा? इस संबंध में मैं सभी दलों और समूहों से इस पर विचार करने और राष्ट्रवाद और साम्राज्यवाद विरोध के संदर्भ में सोचने और आगे आने वाले और अभी चल रहे इस महान संघर्ष में शामिल होने की अपील करूँगा। मैं मुस्लिम लीग के प्रगतिशील तत्वों से भी यही अपील करता हूँ, जिनमें से कुछ के साथ मुझे 1940 में कलकत्ता नगर निगम के कार्यकाल के दौरान काम करने का सौभाग्य मिला है।"

विजय शंकर सिंह

श्री सिंह उत्तर प्रदेश कैडर के एक सेवानिवृत्त आईपीएस अधिकारी हैं।

शिक्षा : उदय प्रताप कॉलेज, वाराणसी और उच्च शिक्षा, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय।

प्रकाशन : सामाजिक सरोकारों, इतिहास और समसामयिकी पर नियमित लेखन।

08 अगस्त, 1942 को इंडियन नेशनल कांग्रेस ने जिस भारत छोड़ो आंदोलन का आगाज़ किया था, उसका विचार सबसे पहले नेताजी सुभाष चंद्र बोस ने 1938 की दिसंबर में ही कांग्रेस के अन्य बड़े नेताओं को दे दिया था। 1939 आते-आते यह तय हो गया था कि यूरोप में धुरी राष्ट्रों और मित्र राष्ट्रों के बीच एक बड़ा युद्ध संभावित है। नेताजी सुभाष की इच्छा थी कि इसी अवसर पर स्वाधीनता का एक निर्णायक संग्राम छेड़ा जाए और वह गलती न दुहराई जाए जो प्रथम विश्वयुद्ध के समय ब्रिटिश हुकूमत पर भरोसा करके की गई थी, लेकिन गांधीजी अंग्रेजों द्वारा इस संबंध में उठाए जाने वाले किसी निर्णायक कदम की प्रतीक्षा में थे। कांग्रेस एक अलग रणनीति पर चल रही थी। इसी बीच डॉ. पट्टाभि सीतारमैया वाला विवाद हो गया और सुभाष 1939 में कांग्रेस से अलग हो गए और उन्होंने 'फॉरवर्ड ब्लॉक' नामक एक नई पार्टी का गठन किया।

"आमार एकटा काज कौरते पारबे? (क्या तुम मेरा एक काम कर सकते हो?)" 05 दिसंबर की दोपहर को सुभाष ने जब अपने 20 वर्षीय भतीजे शिशिर के हाथ को अपने हाथ में लेकर यह वाक्य कहा था, तब किसी को भी पता नहीं था कि एक ऐसी महान घटना घटने जा रही है जो ब्रिटिश सरकार सहित सबको स्तब्ध कर देगी। यह घटना थी सुभाष द्वारा देश से बाहर निकल जाने की। उस रोमांचक एडवेंचर की घटना का विवरण फिर कभी। सुभाष देश छोड़कर कलकत्ता से गोमो, दिल्ली, पेशावर होते हुए काबुल पहुँचे और फिर सोवियत सीमा में घुसकर वहाँ से जर्मनी। यह देश के स्वाधीनता संग्राम की वह घटना है जिस पर कम चर्चा होती है। 'क्या तुम मेरा एक काम करोगे?', यह पूछे जाने पर बिना यह जाने हुए कि काम क्या है शिशिर ने हामी भर दी थी। शिशिर उस महान पलायन के गवाह बने। उन्होंने 'द ग्रेट इस्केप' नाम से एक किताब भी लिखी है।

“देशवासियो! लड़ते रहो! मैं, सुभाष चंद्र बोस आजाद हिंद रेडियो पर आप को संबोधित कर रहा हूँ!”

कामरेड! जब मैंने लगभग दो सप्ताह पहले आपसे बात की थी, तब से भारत में आंदोलन जोश के साथ लगातार जारी है और शहरों से लेकर ग्रामीण इलाकों तक जंगल की आग की तरह फैल रहा है।

> **भारत में भी और विदेश में भी, हम हमेशा आज़ादी के लिए खड़े हैं और हम कभी भी किसी विदेशी शक्ति द्वारा अपनी राष्ट्रीय संप्रभुता पर किसी भी प्रकार के महत्वपूर्ण अतिक्रमण की अनुमति नहीं देंगे। वैचारिक विचारों के बहकावे में न आएँ। दूसरे देशों की आंतरिक राजनीति की चिंता मत करो, वह हमारी चिंता का विषय नहीं है। जब मैं कहता हूँ कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद के दुश्मन हमारे दोस्त और सहयोगी हैं, तब मेरी बातों का यकीन करो।**

महीने भर तो ब्रिटिश प्रचार तंत्र यह धारणा बनाने की कोशिश करता रहा कि यह अभियान अब कम हो रहा है और चीजें शांत हो रही हैं, लेकिन उनका यह प्रयास पूरी तरह से विफल रहा है, क्योंकि ब्रिटिश सरकार ने निहत्थे आंदोलनकारियों पर गोली चलाई। यह खबर बीबीसी और उसके एजेंटों ने या तो खुद दी या उन्हें यह खबर देने के लिए मजबूर किया गया है। मैं आपको आश्वस्त कर सकता हूँ कि महान 1942 के इस वर्ष में भारत अब दुनिया के बाकी हिस्सों से अलग नहीं रह सकता है, चाहे ब्रिटेन वहाँ की घटनाओं पर कितना भी पर्दा डालने की कोशिश करे। सच तो यह है कि भारत के राष्ट्रीय संघर्ष के बारे में अब हर खबर, जो भारतीय कस्बों और गाँवों में घटे, चाहे वह रामनाथ में घटे या वर्धा में, बिक्रमपुर में घटे या लखनऊ में, पुलिस फायरिंग के हर मामले की खबर पूरी दुनिया में तुरंत प्रसारित हो जाती है। उन सभी देशों में इनका प्रसारण रेडियो पर प्रसारित और प्रेस में प्रकाशित किया जाता है, जो मित्र देशों की शक्तियों के प्रति शत्रुतापूर्ण हैं या तटस्थ हैं।

साथियो! मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि पिछले सभी अभियानों में हमें बाहरी दुनिया को भारत में होने वाली घटनाओं और ब्रिटिश साम्राज्यवादियों द्वारा किए गए अत्याचारों के बारे में बताने में कितनी कठिनाई हुई। आज ऐसी समस्या नहीं है और यह मेरा पसंदीदा उद्देश्य है कि बाहरी दुनिया को भारत में घटने वाली सभी घटनाओं के बारे में बराबर अवगत कराते रहा जाए और भारत को चुनौती की इस घड़ी में सभी की सहानुभूति और सहायता की आवश्यकता है। यदि आज आप अपनी आँखों से देख सकते और अपने कानों से सुन सकते, जो आपके मित्र विदेशों में भारत के इस महान संघर्ष के बारे में प्रचार कर रहे हैं, तो आप महसूस कर सकेंगे कि भारत को ब्रिटिश साम्राज्यवाद के दुश्मनों से कितनी सहानुभूति मिल रही है और भारत के लिए यह सहानुभूति उसके संघर्ष की गुरुता और तीव्रता को बढ़ाने के लिए पर्याप्त है, क्योंकि ब्रिटिश साम्राज्यवाद आतंक और क्रूरता पर निर्भर है। हम अपनी राष्ट्रीय स्वाधीनता के संघर्ष में जितना अधिक कष्ट सहेंगे और जितना अधिक त्याग करेंगे विश्व की दृष्टि में भारत का सम्मान उतना ही ऊँचा होगा।

कामरेडो! मैं आपको आगे यह बताना चाहता हूँ कि अब, जब हमने दुनियाभर में जनमत की नैतिक सहानुभूति अपने स्वाधीनता संग्राम के पक्ष में प्राप्त कर ली है, तो हमारे लिए विदेशों से भी यह संभव है कि हमें अपनी दासता से मुक्ति के लिए किसी भी तरह की मदद की आवश्यकता पड़े। इसलिए, इस लड़ाई में आतंकवाद और क्रूरता के सभी आधुनिक रूपों के खिलाफ यदि आप किसी भी समय यह महसूस करते हैं और यदि आप चाहते हैं कि आपके मित्र विदेश में आपकी सहायता करें, तो आपको केवल इतना ही करना है। लेकिन वे मित्र जो भारत को स्वतंत्र देखने के लिए उत्सुक हैं, जब तक आपको उनकी आवश्यकता नहीं है, तब तक वे आपको अपनी सहायता की पेशकश नहीं करेंगे और हमारे राष्ट्रीय सम्मान और स्वार्थ के लिए हमें तब तक उनसे कोई सहायता भी नहीं माँगनी चाहिए, जब तक हम उसके बिना अपनी लड़ाई जारी रख सकते हैं। इस संबंध में मैं आपसे एक बार फिर यह अपील करना चाहूँगा कि आप भारत की आज़ादी के लिए आपके कंधे-से-कंधा मिलाकर काम करने वाले विदेशों में बसे अपने देशवासियों पर पूरा भरोसा रखें। हम आज भारत के राष्ट्रीय सम्मान के रखवाले हैं, स्वतंत्र भारत के ‘अनौपचारिक राजदूत’ हैं। भारत में भी और विदेश में भी, हम हमेशा आज़ादी के लिए खड़े हैं और हम कभी भी किसी विदेशी शक्ति द्वारा अपनी राष्ट्रीय संप्रभुता पर किसी भी प्रकार के महत्वपूर्ण अतिक्रमण की अनुमति नहीं देंगे। वैचारिक विचारों के बहकावे में न आएँ। दूसरे देशों की आंतरिक राजनीति की चिंता मत करो, वह हमारी चिंता का विषय नहीं है। जब मैं कहता हूँ कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद के दुश्मन हमारे दोस्त और सहयोगी हैं, तब मेरी बातों का यकीन करो। ब्रिटिश साम्राज्य को टूटते हुए देखना, उनके हित में है और भारत अब एक बार फिर आज़ाद होगा। वे यह बात अच्छी तरह जानते हैं कि जब तक भारत अंग्रेजों के अधीन रहेगा, तब तक वे कोई जंग नहीं जीत सकते हैं और न ही कहीं शांति हो सकती है। राजनीतिक दृष्टिकोण से विदेशी शक्तियों से सहानुभूति रखने की उम्मीद करने वाला, मुझे आखिरी व्यक्ति होना चाहिए, अगर ऐसा करना उनके अपने हित में न हो तो।

कामरेडो! आपने देखा होगा कि पिछले कुछ महीनों के दौरान ब्रिटिश साम्राज्य अपने सबसे बुरे समय से कैसे गुजर रहा है। वे दिन गए, जब लंदन दुनिया का महानगर था। वे दिन गए, जब राजाओं और राजनेताओं को अपनी समस्याओं को हल करने के लिए लंदन जाने पर वहाँ भटकना पड़ता था। वे दिन गए, जब अमेरिकी

राष्ट्रपति को ब्रिटिश प्रधानमंत्री से मिलने के लिए यूरोप आना पड़ता था। जैसा कि अंग्रेजी कवि टेनीसन ने खुद कहा है, 'पुरानी व्यवस्था नई उपज के लिए स्थान बदल देती है और भगवान खुद इसे कई तरीकों से पूरा करते हैं।' नतीजतन, ब्रिटिश प्रधानमंत्री को अब न्यूयॉर्क और वाशिंगटन भागना पड़ता है और ब्रिटेन में अमेरिकियों को ब्रिटिश कानूनों के अधिकार क्षेत्र से बाहर घोषित किया जाता है और अमेरिकी सैन्य अधिकारियों ने तो ब्रिटिश सेना की कमान में काम करने तक से इनकार कर दिया है। युद्ध के कई मोर्चे खुल गए हैं। इस प्रकार ब्रिटेन और उसका साम्राज्य, रूजवेल्ट के 'नए साम्राज्य' का उपनिवेश बनने की ओर तेजी से बढ़ रहा है, लेकिन भारत की अब पुराने ब्रिटिश साम्राज्य में रहने की कोई इच्छा नहीं है और इसलिए उसे अब नए और पुराने दोनों साम्राज्यवाद से लड़ना होगा। इस कायापलट का सबसे दिलचस्प पहलू यह है कि ब्रिटिश साम्राज्य, जो साम्राज्यवाद का सबसे बड़ा नेतृत्व और भारतीय राष्ट्रवाद का सबसे बड़ा विरोधी है, के प्रधानमंत्री, विंस्टन चर्चिल, जो खुद को समाजवाद के सभी रूपों का स्वघोषित विरोधी कहते हैं, को अपमान का घूँट पीकर मास्को में क्रेमलिन के दरवाजे पर आज खड़ा होना पड़ रहा है।

क्या यह महत्वपूर्ण नहीं है कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद के इस प्रतिनिधि को इस हताशा से उबरने के लिए कुछ कदम उठाना चाहिए, लेकिन किसी भी परिस्थिति में वे भारत की स्वतंत्रता को मान्यता देने के बारे में नहीं सोचेंगे। भारत, ब्रिटिश साम्राज्य का गहना है और इसे बनाए रखने का हर संभव प्रयास वे करेंगे। इस गहने के लिए अंग्रेज अंत तक हमसे लड़ेंगे। इसलिए, भारतीय लोगों को विशेष रूप से हमारे स्वाधीनता संग्राम के नेताओं को यह भ्रम दूर कर लेना चाहिए कि ब्रिटेन भारत को आज़ाद करने की माँग को स्वीकार कर लेगा और इस संघर्ष को तब तक जारी रखना चाहिए जब तक कि अंतिम ब्रिटिश व्यक्ति को भारत से निकाल बाहर नहीं कर दिया जाता। मैं जानता हूँ, हमारे इस अभियान के अंतिम दिनों में बहुत दुख, उत्पीड़न, हत्याएँ, दमन और नरसंहार होंगे, लेकिन यह सब आज़ादी की कीमत है और हमें इसे चुकाना होगा। यह स्वाभाविक है कि अपने अंतिम समय में घायल ब्रिटिश बाघ और संकट उत्पन्न करेगा, आक्रामक होगा, पर यह तो मरते हुए बाघ की फितरत है और हमें इससे बचे रहना है।

कामरेडो! इस महत्वपूर्ण घड़ी में हमारी रणनीति, परिणाम की परवाह किए बिना अपनी स्वतंत्रता के लिए लड़ाई जारी रखने की होनी चाहिए। ब्रिटिश साम्राज्य जल्द ही ढह जाएगा और युद्ध के सभी मोर्चों में पराजय के फलस्वरूप वह टूट जाएगा और जब अंतिम विघटन होगा तो शक्ति स्वतः ही भारतीय लोगों के हाथों में आ जाएगी। हमारी अंतिम जीत अकेले हमारे प्रयासों की बदौलत ही होगी। हमारे लिए यह कम मायने नहीं रखता कि हम भारत में अस्थायी झटके झेलते हैं, विशेष रूप से तब जब हमारा सामना मशीनगनों, बमों, टैंकों और हवाई जहाजों से होता है। हमारा काम है कि सभी बाधाओं और असफलताओं के बावजूद मुक्ति की घड़ी आने तक राष्ट्रीय संघर्ष जारी रखना।

यह निराश होने का कोई कारण नहीं है कि हमारे नेता जेल में हैं। इसके विपरीत, जेल में उनके कष्ट पूरे देश के लिए एक सतत प्रेरणा के रूप में काम करेंगे। मैं पिछले 20 वर्षों से ऐसा ही अभियान चलाने के लिए पेशकश कर रहा हूँ, तब भी जब सभी जेल में बंद कर दिए जाएँ। इसके अलावा, जो अब जेलों में नहीं बंद किए जा सके हैं, उनका यह दायित्व है कि वे उस योजना पर कार्यवाही करें, जो उनके नेताओं ने जेल जाने के पहले उन्हें बताई है।

कामरेडो! मैं आप को पहले ही आश्वस्त कर चुका हूँ कि मैं विदेश में जो कुछ भी कर रहा हूँ, वह अपने देशवासियों के एक बहुत बड़े हिस्से की इच्छा के अनुरूप ही है। मैं ऐसा कुछ भी नहीं करने जा रहा हूँ, जिसका संपूर्ण भारत पूरे दिल से समर्थन नहीं करेगा। पिछले कुछ महीनों के दौरान भारत सरकार के इंटेलिजेंस ब्यूरो और ब्रिटिश सीक्रेट सर्विस के तमाम प्रयासों के बावजूद, मैंने एक से अधिक चैनलों के माध्यम से, जब से मैंने घर छोड़ा है, अपने घर और अपने देशवासियों के साथ घनिष्ठ संपर्क में हूँ। यदि आप मेरे निकट होने का सबूत चाहते हैं तो भारत में मेरे देशवासियों के साथ संपर्क करें और आप में से बहुत से लोग अब तक यह जान गए हैं कि कैसे आप जब चाहें, मुझसे संवाद कर सकते हैं। ऐसा करने के लिए मैंने आज़ाद हिंद रेडियो और खुद के बारे में भारत सरकार की कुछ खुफिया रिपोर्ट देखी हैं और उन्हें देखकर मुझे हँसी ही आई है। यदि ब्रिटिश अधिकारियों को लगता है कि वे मेरे बारे में सब-कुछ जानते हैं तो मैं स्तब्ध हूँ, लेकिन मैं एक-न-एक दिन उन्हें अपने जीवन की अंतिम लड़ाई लड़ने के लिए मजबूर कर दूँगा। इस संबंध में मैं ब्रिटिश सरकार को यह बता दूँ कि उन्होंने शत्रु देशों में जो हथकंडे अपनाए हैं, उनका हमारे लोगों ने सावधानीपूर्वक अध्ययन किया है और वे हमारे पुराने दुश्मन, ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ हमारी लड़ाई में बेहद उपयोगी साबित होंगे।

कामरेडो! वर्तमान समय में जितने भी देश, ब्रिटेन के दबदबे या कब्जे में हैं, वे या तो विद्रोह कर रहे हैं या विद्रोह की तैयारी कर रहे हैं। हम अपना संघर्ष जारी रखेंगे। हम न केवल अपनी आज़ादी पाने के लिए तेजी से प्रयास करेंगे, बल्कि ब्रिटेन द्वारा शोषित और प्रभुत्व वाले सभी देशों की आज़ादी के संघर्ष में भी साथ देंगे। दूसरी ओर, यदि भारतीय लोग इस आज़ादी की लड़ाई में निष्क्रिय रहे, तो ब्रिटेन के दुश्मन देश, अंग्रेजों को ही भारत से खदेड़ने की पहल करेंगे। ब्रिटिश साम्राज्य अब हर मामले में बरबाद हो गया है और अब एकमात्र सवाल यह है कि जब इसका अंतिम विघटन होगा तो हमारा क्या होगा? क्या हम अपनी स्वतंत्रता अन्य शक्तियों के माध्यम से प्राप्त करेंगे या हम इसे अपने प्रयास से अर्जित करेंगे? मैं श्री जिन्ना, श्री सावरकर और उन सभी नेताओं से अनुरोध करूँगा जो अभी भी

अंग्रेजों के साथ समझौता करने के बारे में सोचते हैं, वे एक बार यह महसूस करें कि कल, दुनिया में कोई ब्रिटिश साम्राज्य नहीं होगा। वे सभी व्यक्ति, समूह या दल जो अब भी उन नेताओं के लिए लड़ाई में भाग लेते हैं, जो अभी भी अंग्रेजों के साथ समझौता करने के बारे में सोचते हैं, क्या भारत में उनका सम्मानजनक स्थान होगा? इस संबंध में मैं, सभी दलों और समूहों से इस पर विचार करने और राष्ट्रवाद और साम्राज्यवाद विरोध के संदर्भ में सोचने और आगे आने वाले और अभी चल रहे इस महान संघर्ष में शामिल होने की अपील करूँगा। मैं मुस्लिम लीग के प्रगतिशील तत्वों से भी यही अपील करता हूँ, जिनमें से कुछ के साथ मुझे 1940 में कलकत्ता नगर निगम के कार्यकाल के दौरान साथ-साथ काम करने का सौभाग्य मिला है।

मैं भारत की राष्ट्रवादी मुस्लिम पार्टी, बहादुर, मजलिस- ए-अहरार से अपील करता हूँ, जिसने किसी अन्य पार्टी द्वारा ऐसा करने से पहले ब्रिटेन के युद्ध प्रयासों के खिलाफ सविनय अवज्ञा अभियान शुरू किया था। मैं जमीयत-उ-उलेमा, उलेमाओं के पुराने प्रतिनिधि संगठन या उस प्रतिष्ठित देशभक्त और नेता मुफ्ती खिफायत उल्लाह के नेतृत्व में भारत के मुस्लिम नेताओं से अपील करता हूँ। मैं आज़ाद (स्वतंत्र) मुस्लिम लीग से अपील करता हूँ, जो भारत के राष्ट्रवादी मुसलमानों का एक और महत्वपूर्ण संगठन है। मैं भारत की प्रमुख राष्ट्रवादी सिख पार्टी, अकाली दल से अपील करता हूँ। और अंत में मैं बंगाल की प्रजा पार्टी से अपील करता हूँ, जिसको उस प्रांत का विश्वास प्राप्त है और जिसका नेतृत्व जाने-माने देशभक्त करते हैं। मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि अगर ये सभी संगठन इस संघर्ष में एकजुट होकर शामिल हो गए तो भारत की आज़ादी का दिन निकट आ जाएगा।

भारत में इस समय स्वाधीनता संग्राम का जो अभियान चल रहा है, उसे एक अहिंसक छापामार युद्ध के रूप में वर्णित किया जा सकता है। इस गुरिल्ला युद्ध में फैलाव की रणनीति को अपनाना होगा। दूसरे शब्दों में हमें अपनी गतिविधियों को पूरे देश में फैलाना चाहिए, ताकि ब्रिटिश पुलिस और सेना एक बिंदु पर अपने हमले को केंद्रित करने में सक्षम न हो सके। गुरिल्ला युद्ध के सिद्धांतों के अनुसार, हमें भी जितना संभव हो, उतना ही चलायमान रहना चाहिए और लगातार एक स्थान से दूसरे स्थान पर बदलते रहना चाहिए। ब्रिटिश अधिकारियों को कभी भी यह आभास नहीं होने देना चाहिए कि हमारा अगला कदम क्या होगा। दोस्तो, जैसा कि आप पहले से ही जानते हैं, मैं 1921 और 1940 के बीच हुए स्वाधीनता संग्राम के सभी अभियानों में भाग ले चुका हूँ और मैं उनकी विफलता के कारणों को जानता हूँ। मुझे अब इस रणनीति के संबंध में विशेषज्ञों से समझने का अवसर मिला है और अब मैं गुरिल्ला युद्ध के तरीकों के बारे में आपको कुछ सुझाव देने की स्थिति में हूँ कि कैसे इस वर्तमान अभियान को विजय में परिवर्तित किया जाए। यह दो चरणों में होना चाहिए। पहला, भारत में युद्ध उत्पादन को नष्ट करना और दूसरा, इस अहिंसक छापामार अभियान के माध्यम से ब्रिटिश प्रशासन को पंगु बना देना। इन उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए समाज के प्रत्येक वर्ग को संघर्ष में भाग लेना चाहिए।

- सबसे पहले, उन सभी टैक्सों का भुगतान करना बंद करें जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सरकार को राजस्व देते हैं।
- दूसरे, सभी उद्योगों के श्रमिकों को या तो 'स्टे-इन' हड़ताल शुरू करनी चाहिए या कारखानों के अंदर 'धीमी गति से' अभियान चलाकर उत्पादन में बाधा डालने का प्रयास करना चाहिए। उन्हें उत्पादन में बाधा डालने के लिए नट और बोल्ट को हटाने जैसे तरीकों से तोड़फोड़ भी करनी चाहिए।
- तीसरा, छात्रों को देश के विभिन्न हिस्सों में तोड़फोड़ करने के लिए गुप्त गुरिल्ला बैंड का आयोजन करना चाहिए। उन्हें ब्रिटिश अधिकारियों को परेशान करने के नए तरीके भी इजाद करने चाहिए। उदाहरण के लिए, डाकघरों में डाक टिकट जलाना आदि, ब्रिटिश स्मारकों को नष्ट करना आदि।
- चौथा, महिलाओं और विशेष रूप से छात्राओं को सभी प्रकार के भूमिगत काम करना चाहिए, विशेष रूप से गोपनीय रूप से लड़ने वाले पुरुषों के लिए आश्रय प्रदान करने का काम।
- पाँचवाँ, अभियान में मदद करने के लिए तैयार सरकारी अधिकारियों को अपने पदों से इस्तीफा नहीं देना चाहिए, लेकिन उन्हें सरकारी कार्यालयों और युद्ध उद्योगों के संबंध में उपलब्ध सभी जानकारी बाहर के स्वाधीनता संग्राम सेनानियों को देनी चाहिए और अक्षमता से काम करके उत्पादन में बाधा डालने का प्रयास करना चाहिए।
- छठा, जो नौकर अंग्रेजों के घरों में काम कर रहे हैं, उन्हें अपने मालिकों को परेशान करने के उद्देश्य से संगठित किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, उच्च वेतन की माँग, खाना बनाना और खराब भोजन और पेय परोसना आदि।
- सातवाँ, भारतीयों को सब-कुछ त्याग देना चाहिए बैंकों, फर्मों, बीमा कंपनियों आदि के साथ व्यापार आदि।
- आठवाँ, बीबीसी की यूरोपीय सेवा में कर्नल ब्रिटन के प्रसारण को सुनें और कर्नल की रणनीति को भारतीय स्थिति पर लागू करें।

पीड़ा का पर्याय गिरमिटिया परंपरा

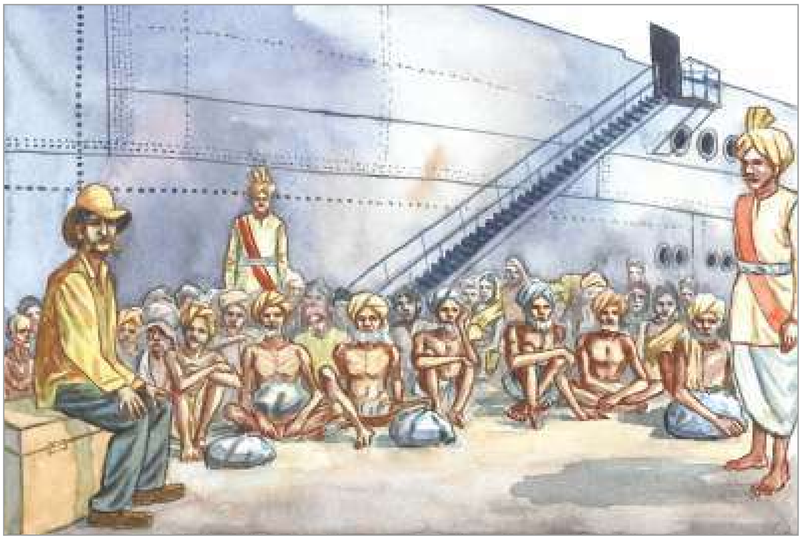

जब ब्रितानिया हुकूमत ने भारतीय उपमहाद्वीप में अपने पाँव तेजी से पसारना शुरू किया तो उत्तर भारत भी उससे अछूता नहीं रहा। गुलामी की बेड़ियों में जकड़े एक महादेश की मनःस्थिति क्या हो सकती है, यह उस भारत से बेहतर कौन जान सकता है। उसने तो इसे पल-पल भोगा और झेला है। ऐसी त्रासदियों की अनकही और अंतहीन कहानियाँ, इस महादेश के गाँव-गाँव और घर-घर की हकीकत बयानी हैं। यह आपबीती भर नहीं है, बल्कि यह भय, भूख, विवशता, विरह-वेदना, टीस, त्याग और औपनिवेशिक अपमान की अभिशप्त कहानियाँ हैं, जिसमें माटी से मोह और उससे जबरन पलायन का, जीवन भर का ही नहीं, बल्कि पीढ़ियों का आर्तनाद है, जो भारतीयों के रोम-रोम से दर्द बनकर टपकता रहा है। ऐसी गहन दारूण परिस्थितियों की उपज है 'गिरमिटिया'।

भारतीय उपमहाद्वीप के लिए यह केवल शब्द भर ही नहीं है, बल्कि वेदना और अंतहीन पीड़ा का रिसता हुआ ऐसा मनोविज्ञान था और है, जिसे इस औपनिवेशिक देश की आबादी ने पीड़ा और अंतहीन दंश के रूप में रात-दिन, पीढ़ी-दर-पीढ़ी तक भोगा है। जहाँ गाँव के हर उस घर में सुबह, शाम और भोरहरी में अपनों के गिरमिटिया बन परदेस भेज दिए जाने पर विरह का मेला लगता था और बूढ़े माँ-बाप की विलाप करती रूदावलियाँ सुनाई पड़ती थीं।

पूरब का देश, यानी उत्तर प्रदेश का पूर्वांचल और बिहार राज्य की भोजपुरी आबादी की पट्टी भी इस शब्द को पीड़ा का पर्याय ही मानती है। गाँव-गाँव से बिदेसिया और गिरमिटिया बनाने की परंपरा के मूल में आर्थिक विपन्नता और औपनिवेशिक विवशता रही। पूर्वांचल में अंग्रेजी हुकूमत ने गोरखपुर में लेबर डीपो खोला और यहीं से पूरबियों का एग्रीमेंट कर उन्हें अपने दूसरे औपनिवेशिक भू-भागों (मॉरीशस, फिजी, गुयाना, त्रिनिदाद, सूरीनाम आदि) पर भेजना शुरू किया। मजदूरों का एग्रीमेंट करने की प्रक्रिया को देशज भाषा में 'एग्रीमेंटिया' कहा जाने लगा और कालांतर में यह शब्द 'गिरमिटिया' हो गया।

एक रिकॉर्ड के अनुसार, "02 नवंबर, 1834 को भारतीय मजदूरों का पहला जत्था गन्ने की खेती के लिए कलकत्ता बंदरगाह से 'एमवी एटलस' जहाज पर सवार होकर मॉरीशस पहुँचा था। पानी के जहाजों से महीनों की यात्रा में ये भारतीय मजदूर परदेस अपने साथ कुछ लेकर नहीं गए, बल्कि श्रुति परंपरा में रामायण की चौपाइयाँ और गीता

डॉ. अरविंद कुमार सिंह

जन्म : 12 अप्रैल, 1982, रामनगर, आजमगढ़, उत्तर प्रदेश।

शिक्षा : पी-एच.डी.।

प्रकाशन : दो पुस्तकें प्रकाशित, विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में आलेख-रिपोर्ट प्रकाशित।

सम्मान : अटल पत्रकारिता सम्मान (लखनऊ), सेठ पृथ्वीराज दरस हिंदी स्वर्ण पदक पुरस्कार, वेमूरि आंजनेय शर्मा स्मारक पुरस्कार, विद्यावाचस्पति (विक्रमशिला हिंदी विद्यापीठ, भागलपुर), भारत गौरव (उज्जैन, मध्य प्रदेश), विद्यासागर (उज्जैन, मध्य प्रदेश)।

संपर्क : मोबाइल– 8318012069

ईमेल– contact2editor@gmail.com

का ज्ञान अपने मानस में लेकर गए और जिन पठारों-पहाड़ों और वनों के देश में उन्हें अंग्रेजी जहाज ने टापुओं पर उतारा, पूरबियों ने उन पहाड़ों, पठारों और घने जंगलों को भी काटकर आबादी बसा ली। सच कहें तो परदेस में भी एक मिनी हिंदुस्तान बसा दिया।"

गिरमिटिया की इन त्रासद भरी कहानियों में एक कहानी पूर्वांचल के बिदेशी यादव और झुलई यादव की भी है। मूलरूप से

बलिया के रसड़ा के एक गाँव अठिलपुरा से इन दोनों भाईयों को ब्रितानिया हुकूमत के सिपाहियों ने गोरखपुर में गिरमिट कर (एग्रीमेंट कर) कलकत्ता के पानी के जहाज से 1873 में मॉरीशस गन्ने की खेती के लिए भेज दिया। वहाँ पहुँचकर उन्होंने अपने अदम्य श्रमशक्ति से खेतों में गन्ना उपजाया, पत्थरों को तोड़ा और आबादी बसाई। धीरे-धीरे भारतीय मजदूरों ने भारत के बाहर मॉरीशस में भी एक भारत बसा लिया है और वहाँ के सामाजिक और राजनीतिक जीवन में व्यापक हस्तक्षेप कर सत्ता तक पहुँच बना ली है।

बिदेशी यादव के पुत्र अनिरुद्ध जगन्नाथ, मॉरीशस के सर्वोच्च सत्ता प्रतिष्ठान तक पहुँचे। वे वहाँ के प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति तक बने, यही नहीं, उनकी तीसरी पीढ़ी में अनिरुद्ध जगन्नाथ के पुत्र यानी बिदेशी यादव के पौत्र प्रविंद जगन्नाथ आज दूसरी बार मॉरीशस के प्रधानमंत्री बनकर सेवा कर रहे हैं। भारत में जब पहले अप्रवासी दिवस सम्मान देने की बात आई तो भारत मित्र अनिरुद्ध जगन्नाथ का नाम सबसे पहले आया और उन्हें पहला अप्रवासी सम्मान दिया गया। विगत दिनों अनिरुद्ध जगन्नाथ 91 वर्ष की अवस्था में इस दुनिया को छोड़कर चले गए। भारत अपने इस हिंदी प्रेमी के अलविदा से दुखी है और पूर्वांचल के बलिया का अठिलपुरा गाँव अपने भारतवंशी पूर्वज के इस निधन से गहरे दुख में डूबा हुआ है।

यह पूरबियों की जीवटता और अदम्य श्रमशक्ति का साहस है कि वे पत्थर को पिघलाकर मोम बना सकने की क्षमता रखते हैं। पूरब का पानी और पूरब की जवानी की यह संघर्ष भरी कहानी दुनिया की महान संघर्ष भरी कहानियों में से एक है। आज भी मॉरीशस में हर साल 02 नवंबर 'अप्रवासी दिवस' के रूप में मनाया जाता है। जिस स्थान पर भारतीयों (मजदूरों) का पहला जत्था उतरा था, वहाँ आज भी अप्रवासी घाट की वह सीढ़ियाँ स्मृति स्थल के तौर पर मौजूद हैं।

बिदेसिया बनने के पीछे सामाजिक और आर्थिक कारण

कभी सोचा है कि पूरबियों में विरह के गीत सबसे अधिक क्यों पसंद किए जाते हैं? भोजपुरी के किट्स-विरही बिसराम से लेकर भोजपुरी के शेक्सपियर-भिखारी ठाकुर तक भोजपुरी अंचल में ही क्यों पैदा होते हैं? 'बिदेसिया' शब्द इस माटी की संस्कृति और जीवनधारा कैसे बन गया। कैसे गरीबी के हिंद महासागर को पाटने के लिए इस अंचल की जवानी का नगरों की ओर पलायन होता रहा और देखते-ही-देखते बिदेसिया भोजपुरी प्रदेश की सांस्कृतिक और सामाजिक परंपरा बन गया? साहित्य में यह शब्द एक पूरी विधा बन गई और पूरबियों का यह अंचल बिदेसिया का आदि जन्मभूमि बन गई।

आखिर यह बिदेसिया है क्या..? जिसने पूरब की जवानी को अपने माटी से पृथक कर नगरों की ओर एक बार भेजना शुरू क्या किया कि यह पीढ़ियों के लिए एक परंपरा-सी बन गई। विरह वेदना में जलती नवविवाहिता पत्नी और बूढ़े माँ-बाप को अपने देश (घर) छोड़कर, पैसे कमाने के लिए इस अंचल से जवानी एक बार परदेस (महानगरों) के लिए क्या निकली कि यह आने वाली पीढ़ियों के लिए परंपरा-सी बन गई और भोजपुरी पट्टी के लिए सांस्कृतिक और लोक साहित्य की आधार भूमि।

पूरब की जवानी में जब रवानी आती है तो माँ-बाप उसे एक पल्लू में बाँधने के लिए विवाह बंधन में बाँध देते हैं और जब घर-परिवार का खर्च चलाने में समस्या आने लगती है तो यह जवानी अपनी जवान पत्नी और बूढ़े माँ-बाप को छोड़कर परदेस चली जाती है। नगरों में श्रमशक्ति बेचकर वह पैसे कमाता है और हर महीने अपने घर पर मनीऑर्डर भेजता है। उस पैसे से घर की गरीबी दूर होती गई। मंडई और खपरैल के घर तेजी से पक्के घर में बदलने लगे। भोग-विलास के संसाधन और सुविधाओं की आमद बढ़ने लगी, लेकिन पति-पत्नी के बीच दांपत्य जीवन का रस सूखने लगा। नवविवाहिता स्त्री अपने पति के इंतजार में जवानी से अधेड़ और फिर अधेड़ से बुढ़ापे की तरफ बढ़ने लगी और पति नगरों में इस अधूरेपन का विकल्प तलाशने लगा।

स्थिति यह हुई कि बरसों पति के मनी ऑर्डर तो घर पर आते रहे, लेकिन मनी ऑर्डर भेजने वाला पति या पुत्र नहीं आया। कई बार तो वह घर आया ही नहीं और नगरों में ही एक नई गृहस्थी बसा किसी और के साथ जीवन बिता दिया। भोजपुरी अंचल में पति के इंतजार में पूरी जवानी काट देने वाली विवाहिता की विरह-वेदना को स्वर देने के लिए गाजीपुर के जनकवि राम आधार त्रिपाठी सरल

विरहिणी की पीड़ा को स्वर देते हुए कहते हैं—

'रहि गईली रहियाँ में आँखियाँ अगोरते
घिसि गईली अंगुरी क पोर,
कौने बरन बाटै हमरो सनेहिया
नाहि जानि साँवर-गोर'

बंगाल का जादू कुछ और नहीं था, भोजपुरी पट्टी का बस एक डर था, जो पूरबियों की आधी आबादी को सताता था कि पैसा कमाने

रेल और जहाज कभी इनसान के बैरी नहीं रहे हैं, बल्कि ये यातायात के सुलभ साधन थे और हैं, जो यात्री को एक स्थान से दूसरे स्थान तक लेकर जाते हैं, लेकिन पूरब की डरी-सहमी स्त्री और उसका मन अपने प्रिय के दूर देश जाने और विछोह के दर्द को भोगने की असीम पीड़ा को सहन नहीं कर पाता है। वह उसके प्रियतम को उससे दूर लेकर जाने वाली इस रेल और जहाज को भी अपनी सौतन मान बैठती और कहने लगती है कि 'रेलिया बैरन पिया को लिए जाए हो... रेलिया बैरन...!'

गए उसके घर के मर्द कहीं बंगाली खूबसूरती और महानगरीय जीवन के चकाचौंध में फँसकर अपना देश-घर न भूल जाए, क्योंकि उस समय कलकत्ता ही पूरब की जवानी की पहली पसंद होता था। भिखारी ठाकुर इन्हीं विरहिणियों की विरह-वेदना के स्वर थे, जो परदेसी पतियों के इंतजार में बुढ़ापे की ओर बढ़ती जा रही थीं और उसका बिदेसिया घर नहीं आया। इस मनोभाव में जो पीड़ा निकली, जो विरह के गीत निकले, जो नाटक मंचित हुए, वह इस विधा के सशक्त हथियार थे और भिखारी ठाकुर इसके प्रमुख हस्ताक्षर।

दरअसल, पूरब की माटी के लिए कभी कलकत्ता, झरिया और बंबई जैसे महानगर ही परदेस बनते रहे हैं। देश में ही परदेस बनने के इस मनोविज्ञान के पीछे पूरबियों की अभावग्रस्त जिंदगी, आर्थिक विषमताओं में जकड़ी जिंदगी, मुफलिसी में फँसी जिंदगी और नगरीय जीवन का आकर्षण था।

भोजपुरी पट्टी के पैदाइश (आजमगढ़), दुनिया के महान विद्वान महापंडित राहुल सांकृत्यायन किशोरवय में ही अपनी पहली पत्नी को छोड़कर कलकत्ता चले गए थे। ज्ञान और उसके विभिन्न पहलुओं पर खोज करते हुए वे दुनिया के बड़े और महान साहित्यकार तो बन गए, लेकिन उनकी विवाहिता जीवनभर उनका इंतजार करती रही और इस इंतजार में पूरी जवानी काट दी, लेकिन राहुल सांकृत्यायन आगे के जीवन में अनेक महिलाओं से विवाह बंधन में बँधते रहे। यह नारी वेदना और उसकी असीम पीड़ा का एक महत्वपूर्ण उदाहरण है।

यह पूरब की जवानी की हकीकत है, जो औपनिवेशिक काल में 'गिरमिटिया' बनने से शुरू हुई और इस विकास यात्रा में आते-आते वह 'बिदेसिया' तक पहुँच गई। जिस पर फिल्में बनीं, साहित्य रचे गए और नाटक मंचित हुए, लेकिन बिदेसिया बनने की यह वेदना आज भी पूरब में जारी है। स्वरूप और तरीके बदल गए हैं, तकनीक पर चढ़कर आए विकास ने बिदेसिया का मॉडल भले बदल दिया है, लेकिन उसकी मूल संकल्पना विरहदग्धा स्त्री की आंतरिक पीड़ा और विरह आज भी है। आज भी यहाँ पूरब की जवानी का खाड़ी देशों और महानगरों की ओर पलायन जारी है, लेकिन इस पर पूरब की सियासत मौन है... क्यों? इसका जवाब नौजवान पीढ़ियों को ढूँढ़ना होगा कि उसे भी आज का बिदेसिया बनना है या फिर अपने देश पर ही चाकरी करना है, क्योंकि पूरब की जवानी और पूरब के पानी में अब उबाल आने लगा है। वह अपने अतीत और भविष्य पर बातें करने लगा है। वह प्रतिभा के पलायन पर सोचने लगा है। सोचने और समझने का यह क्रम यूँ ही जारी रहा तो बहुत जल्द पूरब की कहानी भी बदलने लगेगी। पूरब, पश्चिम की ओर पलायन छोड़ पूरब को ही पश्चिम बना देगा। विकास की एक नई यात्रा शुरू कर सकता है। तब कोई स्त्री भरी जवानी में वैधव्य जीवन जीने पर अभिशप्त नहीं होगी और न ही उसके लिए रेलिया बैरन होगी।

काला जादू कुछ और नहीं, बंगाल के स्त्री सौंदर्य का मोहपाश और पूरबिया स्त्री-मन का भय था...

'रेलिया ना बैरी, जहजिया ना बैरी,
इहे पैइसवा बैरी ना..
देसवा-देसवा भरमाए
इहे पैइसवा बैरी ना..!'

रेल और जहाज कभी इनसान के बैरी नहीं रहे हैं, बल्कि ये यातायात के सुलभ साधन थे और हैं, जो यात्री को एक स्थान से दूसरे स्थान तक लेकर जाते हैं, लेकिन पूरब की डरी-सहमी स्त्री और उसका मन अपने प्रिय के दूर देश जाने और विछोह के दर्द को भोगने की असीम पीड़ा को सहन नहीं कर पाता है। वह उसके प्रियतम को उससे दूर लेकर जाने वाली इस रेल और जहाज को भी अपनी सौतन मान बैठती और कहने लगती है कि 'रेलिया बैरन पिया को लिए जाए हो... रेलिया बैरन...!'

जबकि हकीकत यह है कि रेल कभी बैरी नहीं थी, बल्कि उसके लिए बैरी पैसा था और है, जिसको कमाने के लिए उसका पति सुदूर महानगरों की ओर जाता है। घर की गरीबी और मुफलिसी के चक्की में पिसते जवाँ अरमानों को मारकर भी घर का मर्द कलकत्ता, बंबई और झरिया जाता है। बूढ़े माँ-बाप के सहारे जवान और नवविवाहिता पत्नी को छोड़ जब रेल में बैठता है तो उसको गाँव-घर और परिवार की याद आने लगती है। खेत-खलिहान, बाग-बगीचे और अपने पशुओं को याद करने लगता है और इन्हीं स्मृतियों में डूबे रेल हर पल उसको परिवार से दूर ले जाती है। इधर घर पर पत्नी विरह-व्यथा को हर पल भोगने के लिए अभिशप्त हो जाती है।

दरअसल, रोजी-रोटी के लिए यह पलायन या विस्थापन समाज की आदिम प्रवृत्ति है। यात्राएँ और सामूहिक यात्राएँ हमारी सभ्यता और संस्कृति के विकास के सोपान रहे हैं, ज्ञान-विज्ञान और संस्कृति के वाहक रहे हैं, लेकिन जब आदमी अपनी माँ-माटी और स्त्री से विछोह कर दूर देश कमाने के लिए जाने लगता है तो उसका देश जैसे छूटने लगता है।

पूरब का यह सदियों से भोगा गया यथार्थ है। समाज के मानस में बैठा जैसे पीढ़ियों से चला आ रहा यह आदिम भय है कि 'अमूक गाँव से कलकत्ता कमाने गए मर्द वापस कभी नहीं आए, बल्कि वहीं जाकर बस गए, कारोबार बढ़ा लिया, पैसा कमा लिया, और साथ ही दूसरी बंगालन औरत के साथ परिवार बसा लिया, जबकि गाँव की पहली ब्याहता, जिसको जीवनभर साथ निभाने के वायदे के साथ लाया था, जीवनभर इंतजार करती रही। इस अंतहीन इंतजार में बूढ़ी हो गई और एक दिन इंतजार करते-करते मर गई। मुखाग्नि भी पति के हाथों नसीब नहीं हुई।

यह पूरबिया और उत्तर-मध्य भारत के सामाजिक जीवन का मिथकीय कहानी भर नहीं है, बल्कि भोगी और जी गई हकीकत है, जिसको लेकर पूरब की आधी आबादी जब भी परदेस कमाने के लिए जाने वाली होती है तो संशय और भय के आगोश में मन-ही-मन भयभीत हो अपने नियति पर सवाल करती है। उसका यह भय यथार्थ भी है और पूरब के सामाजिक और पारिवारिक जीवन का स्याह पक्ष भी। पूरब की पहाड़-सी गरीबी, दांपत्य जीवन के रस को सुखाकर, उस एकाकी और नैराश्य जीवन को ही पहाड़ बना देती है।

सदियों से चली आ रही और इस सदी के साठ के दशक तक उत्तर-मध्य भारत के गाँवों में यह मिथक था कि कलकत्ता में काला जादू चलता है। बंगालन औरतें इस जादू से प्रवासी कामगार मर्दों को अपने वश में कर लेती हैं और उन्हें जो खूबसूरत लगता है, उसे सुग्गा (तोता) बनाकर पिंजरे में कैद कर देती हैं, फिर वह चाहकर भी आजाद नहीं हो पाता है, घर-गाँव तो दूर की बातें हैं। बंगाल का काला जादू का आतंक उत्तर-मध्य भारत के गाँवों में स्त्रियों और बुजुर्गों-महिला-पुरुषों में बहुत दिनों तक बैठा रहा, जिसकी अनुगूँज आज भी कभी-कभार सुनने को मिल जाती है। यह एक अनजाने भय से भयभीत गाँव में सामूहिक चर्चा का विषय आज भी बन जाता है तो घर की दादी और नानी इस काले जादू को कहानियों में स्त्री मन के भय को बड़ी तन्मयता से सुनाती हैं।

सोनी-बृजभान और रानी सारंगा की कहानियों के देश में बंगाल के 'काला जादू' पर मिथकीय ज्ञान हमारी न जाने कितनी पीढ़ियों के मानस वाहक बन इसे श्रुति परंपरा में आज तक ढोते आए हैं तो फिर सवाल उठता है कि बंगाल का वह काला जादू क्या था, उसकी हकीकत क्या थी। कैसे किसी को सुग्गा बनाकर पिंजरे में कैदकर रखने की कला में पारंगत थीं बंगाल की खूबसूरत औरतें।

दरअसल, बंगाल का काला जादू कुछ और नहीं उत्तर-मध्य भारत और विशेषकर पूरबिया स्त्रियों के मन में बैठा वह भय था, जिसमें उनके पति कमाने के लिए बंगाल गए। घर पर मनी ऑर्डर भेजते रहे, लेकिन खुद वापस कभी घर नहीं आए, बल्कि बंगाल के काले (साँवले) सौंदर्य के मोहपाश में फँसकर वहीं के होकर रह गए। बंगालन औरतों से शादी कर घर बसा लिया। धीरे-धीरे गाँव-घर, माँ-बाप और पत्नी-बच्चे को भी भूल गए। चिट्ठी-पत्री भेजने का क्रम कम होता गया और धीरे-धीरे बंद हो गया। भिखारी ठाकुर का बिदेसिया की कथावस्तु उत्तर-मध्य भारत और विशेषकर पूरब के लगभग हर घर की कहानी है।

कमाने गया पुरुष नगर में चाकरी करते हुए अपने शारीरिक जरूरतों को पूरा करने के लिए विकल्प तलाशने लगा। पैसा उसके इस विकल्प की तलाश में सहायक बना और एक दिन वह स्थायी विवाह बंधन में बँध गया। गाँव और नगर के परिवार के बीच सामंजस्य बैठाने के प्रयास में वह 'दो पाटन के बीच साबित बचा न कोय' की स्थिति को प्राप्त होने लगा। दूसरी ओर स्त्री मनोविज्ञान इंतजार करते-करते गाँवों में भी विकल्प की तलाश करने लगा और विवाहेत्तर संबंधों की जमीन तैयार होती चली गई।

महान मनोवैज्ञानिक फ्रायड कहते हैं कि दुनिया के सारे संघर्ष और समस्या का कारण स्त्री है। वहीं मार्क्स इसके लिए धन को कारण मानते हैं। दरअसल, दोनों विद्वान आधा-आधा सत्य बोलते हैं और दोनों महान विद्वानों के आधे-आधे सत्य को मिला दिया जाए तो एक पूरा सत्य निकलता है कि 'दुनिया की सभी समस्याओं के मूल में स्त्री और पैसा है'।

यही पैसा आदमी के लिए बैरी बन जाता है। उसके प्रेम और दांपत्य जीवन के लिए बाधक बन जाता है, लेकिन विरहिणी स्त्री रेल और जहाज को सौतन और बैरी मान बैठती थी।

क्रांतिकारी मास्टर अमीरचंद

भारत के हर प्रांत में अनेक ऐसे क्रांतिकारियों का जन्म हुआ है जिन्होंने अपना सर्वस्व मातृभूमि को समर्पित कर दिया। जब भी हम क्रांतिकारियों की चर्चा करते हैं अथवा उनकी देशभक्ति, शौर्य और बलिदान को स्मरण करते हैं तो हमारा शीश उनके चरणों में नतमस्तक हो जाता है। मास्टर अमीरचंद एक ऐसे क्रांतिकारी थे जिन्होंने अंग्रेजों को देश से निकालने का दृढ़ संकल्प लिया हुआ था। उन्होंने न सिर्फ जीवनभर देश की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया, बल्कि समाज को सुधारने के लिए भी स्वयं पहल की।

रेनू सैनी

संप्रति : हिंदी कमेंटेटर एवं एंकर, देश-विदेश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में तीन हजार से अधिक रचनाओं का प्रकाशन।

प्रकाशन : दिशा देती कथाएँ, बचपन का सफर, बचपन मुस्काया जब इन्हें सुनाया, महात्मा गांधी के प्रेरक प्रसंग, संत कथाएँ मार्ग दिखाएँ, कलाम को सलाम, सक्सेस गीता-सफल जीवन के 125 मंत्र, जीवनधारा, डायमंड लाइफ, मोदी सक्सेस गाथा, दिल्ली चलो आदि।

पुरस्कार : भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम मेमोरियल अवॉर्ड तथा बाल साहित्य सम्मान से सम्मानित।

संपर्क : saini.renu830@gmail.com

कहते भी हैं कि एक अच्छा नेता वही होता है जो कठिन मार्ग पर पहले स्वयं चलता है और उसके बाद अन्य लोगों को अपने पदचिह्नों पर चलने के लिए प्रेरित करता है।

मास्टर अमीरचंद का जन्म सन् 1869 में दिल्ली में हुआ था। इनको पढ़ने-लिखने का बहुत शौक था। इनके पिता हुकमचंद भी उच्च शिक्षित थे। वे हैदराबाद दक्खिन (उस समय देशी राज्य) की लेजिस्लेटिव असेंबली में सेक्रेटरी थे। एक बार वह इंग्लैंड गए तो वहाँ महारानी विक्टोरिया ने उनके ज्ञान की बेहद सराहना की। इनके पिता हुकमचंद की विधि संबंधी जानकारी बृहद थी। यहाँ तक कहा जाता है कि इनके पिता की एक पुस्तक बैरिस्टर्स और वकीलों की पाठ्यपुस्तक तक में शामिल थी। अनेक बैरिस्टर और वकील इनकी पुस्तक पढ़कर ही विधि संबंधी बारीकियों को समझते थे।

यही कारण था कि अमीरचंद को शिक्षा का गुण विरासत में मिला था। उन्होंने मिशन स्कूल और कॉलेज में शिक्षा पाकर मिशन स्कूल में शिक्षक का पद ग्रहण कर लिया। वे केवल विद्यार्थियों को पढ़ाते ही नहीं थे, बल्कि उनकी समस्या का हर संभव समाधान भी करते थे। जिन विद्यार्थियों की आर्थिक स्थिति दयनीय थी, उनको वित्तीय सहायता भी देते थे। यही कारण है कि वे सभी विद्यार्थियों के प्रिय शिक्षक थे। शिक्षा के क्षेत्र में कैसे और कहाँ सुधार करना है, यह बात मास्टर अमीरचंद से बेहतर कोई नहीं जानता था। जब वे मिशन स्कूल में पढ़ा रहे थे तभी एक दिन उन्हें पता चला कि संस्कृत स्कूल नाम से एक स्कूल खत्म होने के कगार पर है। वहाँ पर गंभीरता से कार्य करने के लिए एक सुयोग्य व्यक्ति की आवश्यकता है। यह समाचार पाते ही उन्होंने उस स्कूल को सुधारने का निर्णय कर लिया। उन्होंने उस स्कूल के प्रशासन को सँभाला और उस स्कूल के मुख्याध्यापक बन गए। उनके संस्कृत स्कूल में आते ही

कुछ ही समय बाद स्कूल की कायापलट हो गई। स्कूल फिर से अच्छी स्थिति में आ गया।

सभी शिक्षक उनके काम करने के अद्‌भुत तरीके से बेहद प्रभावित थे। इसलिए एक दिन सब शिक्षकों ने निर्णय लिया कि ऐसे शिक्षक के नाम के आगे 'मास्टर' होना चाहिए जो हर कार्य में मास्टर है। अगर मास्टर उनके नाम के आगे होगा तो सबको पहले ही ज्ञात हो जाएगा कि वे अद्‌भुत प्रतिभा के धनी हैं। बस फिर क्या था, अब

एक दिन एक व्यक्ति ने कहा, "मास्टर जी, हमारे अंदर आपके जितनी शक्ति नहीं है कि समाज का सामना कर सकें। समाज और अंग्रेजों से लोहा केवल आप ले सकते हैं तो फिर ये नेक काम भी आप ही कीजिए।" बस उस व्यक्ति का कहना था, फिर क्या था कि अगले ही दिन से उन्होंने विधवा विवाह के सामाजिक कार्यक्रम आरंभ कर दिए और लोगों को पुनर्विवाह के लिए जागरूक करना शुरू कर दिया। मास्टर अमीरचंद की कथनी और करनी एक देखकर लोग आश्चर्यचकित रह गए। उन्होंने विधवा विवाह के खिलाफ आवाज उठाने में समाज की परवाह नहीं की। यह देखकर असंख्य लोगों ने इनसे प्रेरणा ली और कई घर की विधवा बेटियों एवं बहुओं के पुनर्विवाह होने लगे।

तो सभी शिक्षकों ने इन्हें 'मास्टर अमीरचंद' के नाम से पुकारना आरंभ कर दिया। इस तरह अमीरचंद, 'मास्टर अमीरचंद' बन गए। उन्होंने रामजस स्कूल में भी पढ़ाया। अब अमीरचंद हर क्षेत्र में मास्टर थे तो ऐसे में वे समाज की कुरीतियों को दूर करने में पीछे कैसे रहते? उन्होंने विद्यार्थियों एवं लोगों को शिक्षित करने के साथ-साथ समाज की बुराइयों के विरुद्ध भी आवाज उठानी आरंभ कर दी। उनका विवाह कम उम्र में ही हो गया था, लेकिन उनकी पत्नी का देहांत अल्पायु में ही हो गया। इसलिए अकसर सगे संबंधी एवं मित्रगण उन पर पुनर्विवाह का दबाव डालते। उनके संबंधी अकसर कहा करते, "अभी तुम्हारी उम्र ही क्या है? दोबारा विवाह करके अपना घर बसा लीजिए। बिना पत्नी के घर, घर नहीं होता। जीवन बिना पत्नी के साथ के नहीं गुजरता।" इस पर वह तुरंत जवाब देते, "जब स्त्रियों का पुनर्विवाह नहीं हो सकता तो फिर पुरुषों का क्यों हो? स्त्रियों के लिए हजार बंदिशें और पुरुषों के लिए कोई बंदिश नहीं। ऐसा क्यों? स्त्रियों का जीवन तो पुरुषों से अधिक कठिन होता है। ऐसे में उनके विधवा होने पर कोई यह बात क्यों नहीं कहता।" उनका यह जवाब सुनकर संबंधियों के मुँह पर ताला लग जाता। वे अकसर कहते भी थे, "आप सब ये प्रश्न सुनकर चुप क्यों हो जाते हैं? विधवा के पुनर्विवाह पर आवाज क्यों नहीं उठाते?" एक दिन एक व्यक्ति ने कहा, "मास्टर जी, हमारे अंदर आपके जितनी शक्ति नहीं है कि समाज का सामना कर सकें। समाज और अंग्रेजों से लोहा केवल आप ले सकते हैं तो फिर ये नेक काम भी आप ही कीजिए।" बस उस व्यक्ति का कहना था, फिर क्या था कि अगले ही दिन से उन्होंने विधवा विवाह के सामाजिक कार्यक्रम आरंभ कर दिए और लोगों को पुनर्विवाह के लिए जागरूक करना शुरू कर दिया। मास्टर अमीरचंद की कथनी और करनी एक देखकर लोग आश्चर्यचकित रह गए। उन्होंने विधवा विवाह के खिलाफ आवाज उठाने में समाज की परवाह नहीं की। यह देखकर असंख्य लोगों ने उनसे प्रेरणा ली और कई घर की विधवा बेटियों एवं बहुओं के पुनर्विवाह होने लगे।

अंग्रेजों के अत्याचार देखकर उनका खून खौल उठता था। वे अंग्रेजों को देश से निकालने के लिए आतुर थे। स्वदेशी आंदोलन के दौरान उन्होंने हैदराबाद के बाजार में स्वदेशी स्टोर खोला था। उस स्टोर में देशभक्तों की तस्वीरें एवं क्रांतिकारी साहित्य की बिक्री होती थी। जब इन्हें लगा कि इससे बढ़कर कुछ करना होगा तब उन्होंने एक राष्ट्रीय वाचनालय खोला। इसमें पाठकों को देशभक्ति की भावना से ओत-प्रोत साहित्य प्रदान किया जाता था, लेकिन वाचनालय में अधिकतर लोगों को आने की आदत नहीं थी। यह देखकर भी उन्होंने हार नहीं मानी और घर-घर जाकर लोगों को वाचनालय में आने के लिए प्रेरित किया। उनके प्रयासों से जब लोग वाचनालय में आने लगे तो अंग्रेजी सरकार के पैरों तले जमीन खिसक गई। अंग्रेज जानते थे कि मास्टर अमीरचंद देशभक्ति का साहित्य परोसकर लोगों के मन में देशभक्ति की ज्वाला जला देंगे और इस तरह उन्हें देश छोड़कर जाना पड़ेगा। उस समय देश में देशभक्ति साहित्य का अभाव था। इसलिए इन्हें साहित्य सृजन भी करना पड़ा। राष्ट्रीय वाचनालय की तरफ से कुछ पुस्तिकाएँ प्रकाशित की गईं, लेकिन जब पुलिस पीछे पड़ गई तो प्रेस के मालिकों ने इन पुस्तिकाओं को प्रकाशित करने से इनकार कर दिया। उन्हीं दिनों 'आफताब' नामक अखबार और 'आफताब' प्रेस को बंद कर दिया गया। इससे लोगों में खासकर प्रेस वालों में डर पैदा हो गया। मास्टर अमीरचंद ने इस चुनौती को भी स्वीकार करते हुए 'नेशनल प्रेस' नाम से एक छापाखाना भी चालू कर दिया, लेकिन केवल प्रेस खुलने से ही तो काम नहीं होता। लोगों ने इस प्रेस में डर से अपना कोई भी काम नहीं दिया। अब इस प्रेस में काम करने वालों के सामने पेट भरने की विकट समस्या भी आ खड़ी हुई। ऐसे कठिन समय में भी मास्टर अमीरचंद ने किसी से मदद न माँगी और स्वयं घाटे को सहन करते रहे। जब प्रेस के कर्मचारियों ने उनसे चंदा माँगने के लिए कहा तो उन्होंने साफ इनकार कर दिया और कहा, "चंदा माँगने का अधिकारी वही है, जो पहले स्वयं को लुटा दे। अभी हमने स्वयं को समर्पित ही कहाँ किया है?" इस तरह मास्टर अमीरचंद एक सच्चे देशभक्त की तरह हर मुसीबत का सामना कर लोगों के मन में देशप्रेम की लौ को प्रज्वलित करते रहे।

क्रांतिकारी मास्टर अमीरचंद अंग्रेजों को नाकों चने चबवाना चाहते थे। इसके लिए वे लोगों को जागरूक करते थे और अनेक ऐसी योजनाएँ बनाते थे जिससे कि अंग्रेजों को सबक सिखाया जा सके। उन दिनों भारत की राजधानी कोलकाता थी, लेकिन जब वहाँ क्रांतिकारियों की गतिविधियाँ बढ़ने लगीं तो अंग्रेजों को वहाँ राजधानी को रखना ठीक नहीं लगा। इसलिए उन्होंने भारत की राजधानी को दिल्ली बनाने का फैसला किया। इसके पीछे अंग्रेजों की मंशा यह थी कि दिल्ली में राजधानी रखना इसलिए सुरक्षित है क्योंकि अभी तक उत्तर भारत में क्रांतिकारी आंदोलन बहुत अधिक नहीं फैला था। दूसरा, दिल्ली भारत के बीचोंबीच थी। अंग्रेजों को लगता था कि दिल्ली को भारत की राजधानी बनाने से उनका शासन सुनियोजित तरीके से चलेगा, लेकिन क्रांतिकारी अंग्रेजों की इस चाल को समझ गए और उन्होंने उनकी इस चाल को नाकाम करने के लिए कमर कस ली।

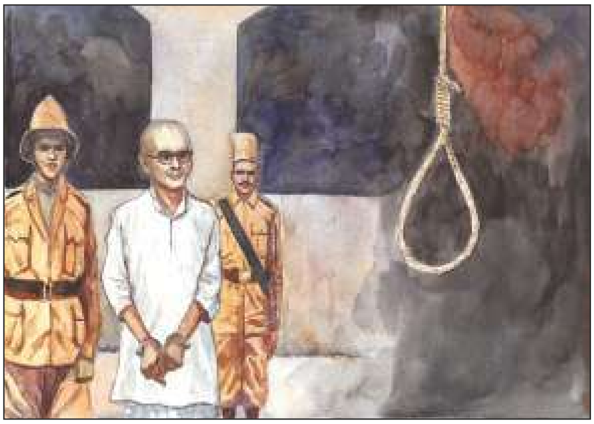

क्रांतिकारी अंग्रेजों को यह पाठ पढ़ाना चाहते थे कि केवल राजधानी बदलने से काम नहीं चलेगा, बल्कि उन्हें भारत देश की भूमि के कण-कण को छोड़ना पड़ेगा। ऐसे में वे किसी भी प्रांत को अपनी राजधानी क्यों न बना लें, लेकिन भारतीय चुप नहीं बैठेंगे, वे लगातार विरोध करेंगे और उन्हें भगाकर ही दम लेंगे। दिल्ली को राजधानी बनाने के लिए दिल्ली दरबार किया गया। इसमें भारत के सारे राजा-महाराजा और नवाब ठाट-बाट से हाथी, घोड़े, मखमल, सोना-चाँदी, हीरे-मोती के साथ आए। इन सभी राजा-महाराजाओं ने ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधि जॉर्ज पंचम के सामने झुककर राजभक्ति को प्रकट किया। इसी दिल्ली दरबार में यह घोषणा की गई कि अब से भारत की राजधानी कोलकाता नहीं, बल्कि दिल्ली होगी। यह भी तय किया गया कि इसके उपलक्ष्य में एक उचित समारोह के साथ 23 दिसंबर, 1912 को वायसराय लॉर्ड हार्डिंग शानदार जुलूस का नेतृत्व करें और दिल्लीवासियों के सामने आएँ। इस तरह से नई राजधानी का उद्घाटन समारोह भी हो जाएगा और लोगों को यह भी ज्ञात हो जाएगा कि ब्रिटिश शासन इस देश से जल्द उखड़ने वाला नहीं है। निश्चित दिन जुलूस निकला। ब्रिटिश अधिकारी रौब से इस जुलूस के साथ चल रहे थे, लेकिन उस दिन क्रांतिकारियों के दिमाग में कुछ और ही चल रहा था। 23 दिसंबर, 1912 को लॉर्ड हार्डिंग एक बहुत ऊँचे भव्य हाथी पर सवार थे। उस पर बहुमूल्य होदा लगा हुआ था। हाथी का शरीर बेशकीमती कामदार कपड़े से ढका हुआ था। ब्रिटिश अधिकारी हाथी पर नवाब बनकर बैठे हुए थे। उस दिन अमीरी और नवाबगिरी दिखाने का कोई रौब अंग्रेजों ने नहीं छोड़ा था।

क्रांतिकारी उनके इस नवाबीपन और रौब को मिट्टी में मिला देने पर तुले थे। ऐसा करना जरूरी भी था, क्योंकि उस समय अंग्रेजों के इस जुलूस से लोगों के मन में भय और निराशा व्याप्त हो चली थी। उन्हें लगने लगा था कि अब भारत पर आज़ादी का सूरज कभी नहीं निकलेगा। जुलूस आगे बढ़ता रहा। आगे बढ़ते-बढ़ते वह चाँदनी चौक की ओर बढ़ने लगा। तभी अचानक बड़े जोर का धमाका हुआ। हर ओर भगदड़ मच गई। लोगों में हाहाकार मच गया। किसी को कुछ समझ ही न आया कि क्या हुआ है? कुछ देर बाद लोग सँभले तो उन्हें समझ आया कि सम्राट के परम श्रेष्ठ प्रतिनिधि पर बम गिराया गया है। क्रांतिकारियों ने इस बार वायसराय को अपना निशाना बनाया था। लेकिन इस हमले में लॉर्ड हार्डिंग तो बाल-बाल बच गए, पर उनके अंगरक्षक मारे गए। लाखों रुपये खर्च करके अंग्रेजों ने जुलूस की जो योजनाएँ बनाई थीं, वे सब धरी-की-धरी रह गईं। क्रांतिकारियों ने बम फेंककर अंग्रेजों की तमाम योजनाओं पर पानी फेर दिया। इस बम के पीछे आखिर कौन लोग थे? अंग्रेज पुलिस इस रहस्य को ढूँढ़ने में लग गई। धीरे-धीरे भेद खुलते गए। पहले एक क्रांतिकारी का नाम आया, पर अंग्रेजों को मालूम था कि यह काम अकेले एक क्रांतिकारी का नहीं है, बल्कि इसके पीछे क्रांतिकारियों का समूह है। कुछ ही समय बाद अंग्रेजों ने यह पता लगा लिया कि लाला हरदयाल का एक क्रांतिकारी गुट था। उसमें सबसे प्रमुख रत्न थे मास्टर अमीरचंद। अन्य प्रमुख सदस्य थे—भाई बालमुकुंद, बसंतकुमार विश्वास, अवधबिहारी, हनुमंत सहाय और बलराज भल्ला। इन सभी पर मुकदमा चलाया गया। मुकदमे में मास्टर अमीरचंद, भाई बालमुकुंद, अवधबिहारी और बसंतकुमार विश्वास को फाँसी की सजा सुनाई गई। इन सभी ने फाँसी की सजा को हँसते-हँसते सुना। 08 मई, 1915 को मास्टर अमीरचंद, भाई बालमुकुंद और अवधबिहारी को दिल्ली की जेल में फाँसी दी गई। आज वहाँ पर आज़ाद मेडिकल कॉलेज है। बसंतकुमार विश्वास को अंबाला जेल में फाँसी पर चढ़ाया गया। मास्टर अमीरचंद जीवनभर देशहित में संघर्ष करते रहे।

आज हम सभी स्वतंत्र भारत में श्वास ले रहे हैं, इसका श्रेय मास्टर अमीरचंद जैसे महान क्रांतिकारियों को जाता है। मास्टर अमीरचंद एक ऐसे व्यक्तित्व के स्वामी थे जो पहले स्वयं कठिन मार्ग पर चले। वे बोलने के बजाय कर्म करने में विश्वास करते थे। ऐसे कर्मठ क्रांतिकारी को शत्-शत् नमन।

चंद्रशेखर आज़ाद विलक्षण व्यक्तित्व

बीसवीं शताब्दी के प्रथम चार दशकों में क्रांतिकारियों ने स्वाधीनता संग्राम में अहम भूमिका निभाई थी, लेकिन उनके बारे में अनेक अनर्गल बातें प्रचलित हुईं। काकोरी कांड में कारावास-प्राप्त क्रांतिकारियों की सन् 1937 में रिहाई के बाद जवाहरलाल नेहरू ने उनके सम्मान में आनंद भवन, इलाहाबाद (अब प्रयागराज) में समारोह का आयोजन किया था। इसमें प्रवेश करने से पहले आचार्य कृपलानी ने मजाक में ही सही, क्रांतिवीरों को 'डकैत' कहकर संबोधित किया था, जिसका प्रतिवाद क्रांतिकारी मुकंदीलाल ने किया था। आज़ादी के बाद अनेक मिथ्या धारणाएँ समाप्त हो पाई हैं, लेकिन चंद्रशेखर आज़ाद के बारे में अनेक मनगढ़ंत बातें अभी भी लोग करते हैं। उन्हें

झाँसी के निकट ओरछा रोड पर सातार नदी के तट पर आजाद द्वारा खोदी गई सुरंग और कुटिया जहाँ आजाद ने काकोरी कांड के बाद अज्ञातवास बिताया। यहीं पर उन्होंने हनुमान जी का मंदिर भी बनाया और एक कुईयाँ भी खोदी। ये सभी आज भी वहाँ हैं।

जिद्दी, बंदूकबाज, घमंडी और आत्मघाती आदि कहा जाता रहा है। इसका कारण है कि उनके लोक जीवन का आरंभ ही किशोर अवस्था में असहयोग आंदोलन में भाग लेते समय माफी माँगने की जगह बेंत खाने को प्राथमिकता देने और अपना नाम 'आज़ाद' बताने से हुआ था। इस छवि को उनकी मूँछों पर ताव देते चित्र ने और मजबूत ही किया।

इसके विपरीत, सत्यता यह है कि आजाद ऐसे कुछ भी न थे। यहाँ उल्लिखित उनके साथियों द्वारा बताए हुए कुछ संस्मरणों से उनके व्यक्तित्व का सही आकलन किया जा सकता है। उनके साथी उन्हें 'पंडितजी' कहा करते थे।

आज़ाद पूर्णतः शाकाहारी थे, लेकिन उन्हें शिकार का शौक था। वह शाकाहार पर अपने विचार अपने साथियों पर थोपा नहीं करते थे, जबकि उनके साथी उनसे इस बिंदु पर मजाक किया करते थे। एक बार भगत सिंह ने उनसे कहा, "मांस तो क्षत्रिय आहार है तो आप क्यों नहीं खाते?" बार-बार कहे जाने पर आज़ाद ने अंडा खाना स्वीकार कर लिया, इस पर भगत सिंह ने फिर मजाक किया, "यह किस प्रकार का शाकाहार है।" आज़ाद ने झुँझलाकर कहा, "अंडा एक फल है।" इस पर भगवानदास माहौर बोले, "ठीक है, यदि अंडा फल है तो मुर्गी निश्चित ही पेड़ है।" भगत सिंह भी इसमें कूद पड़े, "क्या तर्क है! जरा पंडितजी को देखो!" परेशान होकर आज़ाद ने कहा, "अजीब हो तुम लोग। पहले अंडा खाने पर जोर देते हो और जब मैं खा लेता हूँ तो मेरा मजाक उड़ाते हो। अब बस भी करो।" आज़ाद ने कभी भी शराब नहीं पी और केवल दो अवसरों पर धूम्रपान किया था। एक बार जब वह साधु बन एक पुलिसकर्मी को गच्चा दे रहे थे और

ए.के. गांधी

जन्म : 1960 मेरठ।

शिक्षा : एम.ए., एल.एल.बी., ए.डी.सी., सी.आई.सी.।

संप्रति : स्वतंत्र इतिहासकार, लेखक व अनुवादक।

प्रकाशन : '1857 क्रांति व क्रांतिधरा', 'प्रताप, शिवाजी और छत्रसाल' व अन्य (इतिहासकार के रूप में); 'निबंध लेखन की कला', 'Language Across the Curriculum' व अन्य, (लेखक के रूप में), 'गोंड', 'कोमगता मरू' व अन्य, (अनुवादक के रूप में)।

संपर्क : मोबाइल– 9412113951, 7500313951

ईमेल– akganndhi@yahoo.co.in

दूसरी बार जब एक मुखबिर को दबोचना था। आज़ाद दल के सेनापति थे, लेकिन वह किसी भी काम को करने में हिचकिचाते नहीं थे। किसी भी केंद्र पर रात का खाना सभी एक साथ खाते थे और इससे संबंधित कार्यों को बारी-बारी से बाँट लेते थे। एक बार खाना परोसने और बरतन धोने की बारी कुंदनलाल की थी। देर हो चुकी थी, सभी खाना खा चुके थे और अब कुंदनलाल बरतन माँज रहे थे। यह देखकर आज़ाद और शचींद्रनाथ बख्शी उनकी सहायता के लिए

“मजेदार बात है कि क्रांतिकारी बनने से पहले आज़ाद कुछ समय तक बंबई (अब मुंबई) में रहे, जहाँ उन्होंने इतनी फिल्में देखीं कि वह ऊब गए और इस आदत को पूरी तरह छोड़ दिया। दूसरी ओर भगत सिंह, सुखदेव और विजय कुमार सिन्हा को फिल्में देखने का शौक था। आज़ाद उन्हें चेतावनी देते रहते थे कि वहाँ पुलिस की नजर रहती है, लेकिन वे फिर भी चोरी-छिपे देख ही आते थे। वास्तव में, विजय कुमार सिन्हा सिनेमा में ही धरे गए थे।”

आ गए। बातों-बातों में जब उनसे पूछा गया कि क्या उन्होंने खाना खाया था तो पता चला कि उनकी बारी आने तक भोजन समाप्त हो चुका था। आज़ाद ने तब भोजन की व्यवस्था कराई।

एक बार रात में आज़ाद ने देखा कि भगत सिंह ठीक से सो नहीं पा रहे थे। उस दिन रात्रि का भोजन कम था। आज़ाद ने पूछा कि क्या नाश्ता नहीं किया था तो पता चला कि भगत सिंह ने उस पैसे से 'अंकल टॉम्स केबिन' फिल्म देख डाली थी। डाँट तो पड़नी ही थी, लेकिन देर रात आज़ाद ने भोजन का प्रबंध भी किया।

मजेदार बात है कि क्रांतिकारी बनने से पहले आज़ाद कुछ समय तक बंबई (अब मुंबई) में रहे, जहाँ उन्होंने इतनी फिल्में देखीं कि वह ऊब गए और इस आदत को पूरी तरह छोड़ दिया। दूसरी ओर भगत सिंह, सुखदेव और विजय कुमार सिन्हा को फिल्में देखने का शौक था। आज़ाद उन्हें चेतावनी देते रहते थे कि वहाँ पुलिस की नजर रहती है, लेकिन वे फिर भी चोरी-छिपे देख ही आते थे। वास्तव में, विजय कुमार सिन्हा सिनेमा में ही धरे गए थे।

आज़ाद सभी को नाश्ते के लिए पाँच रुपये प्रतिदिन दिया करते थे। इसके अतिरिक्त, उन सभी को पाँच रुपये और दिए गए थे जिसे केवल तभी खर्च किया जा सकता था जब वे पुलिस से भाग रहे हों। ज्ञातव्य है कि शिव वर्मा और जयदेव केवल इसलिए पकड़े गए थे क्योंकि उनके पास भागने के लिए पैसे नहीं थे। इससे पता चलता है कि आज़ाद किस प्रकार साथियों की सुरक्षा की योजना बनाते थे।

आज़ाद के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण था अपने साथियों की भलाई और सुरक्षा, जिसके लिए वह अपने हितों का त्याग करने को भी तैयार रहते थे। किसी केंद्र पर कामरेडों की अधिक संख्या होने पर बिस्तर और भोजन की कमी हो जाया करती थी, क्योंकि धन की कमी थी और अपनी सुविधा पर खर्च करने को विलासिता समझा जाता था। बिस्तर कम होने पर वह ठंड में भी जमीन पर अखबार बिछाकर अपनी धोती ओढ़कर सो जाया करते थे। इस प्रकार के त्याग अन्य साथी भी किया करते थे। भगत सिंह और राजगुरु ने अनेक ठंडी रातें केवल एक दरी या कंबल के सहारे काटी थीं।

एक बार झाँसी प्रवास के दौरान बैठक चल रही थी, जो लॉर्ड इरविन द्वारा सांडर्स हत्याकांड मुकदमे को तीव्रता से निबटाने के लिए विशेष न्यायाधिकरण पारित करने के बाद भगत सिंह व बटुकेश्वर दत्त को दिल्ली से रेल द्वारा लाहौर ले जाते समय उन्हें छुड़ाने और लॉर्ड इरविन की रेल में बम धमाका करने की योजना बनाने के लिए एकत्र हुए थे। तभी कानपुर से सुरेंद्र पांडे आ पहुँचे और बताया कि पुलिस को आज़ाद के झाँसी में होने की भनक लग चुकी है और किसी भी समय छापा पड़ सकता है। सभी साथियों ने आज़ाद को वहाँ से निकल जाने को कहा, लेकिन उन्होंने सेनापति होने के नाते पहले

सभी साथियों को वहाँ से जाने का आदेश दिया और सबसे आखिर में ठिकाना छोड़ा।

इसी बैठक के दौरान उनके पास वे समाचार-पत्र भी थे जिनमें भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त के चित्र छपे थे। वे सभी भूमि पर बैठे थे और एक साथी जब अचानक उठा तो उसका पैर चित्र पर पड़ गया। इस पर आज़ाद पहले क्रुद्ध और बाद में भावुक हो गए।

उन्होंने अस्थिर शब्दों में कहा, "ध्यान रखो, मित्र। वे राष्ट्र की संपत्ति हैं। वे शहीद हैं। देश अब उनकी पूजा करेगा। उनका स्तर हमसे कहीं ऊँचा है। उनके चित्र पर पैर रखना राष्ट्रीय भावना को कुचलने के समान है।"

आज़ाद ने क्रांतिकारी जीवन के सभी फैसले आम सहमति से लिए थे, लेकिन एक बार निर्णय लेने के बाद वह सख्त हो उठते थे। यही गुण भगत सिंह में भी था। आज़ाद अपने साथियों की ताकत और कमजोरी पहचानते थे, यही कारण था कि सुखदेव को योजना बनाने में आगे किया जाता था। जब सांडर्स की हत्या की योजना बन रही थी तो आज़ाद को स्वयं इस 'एक्शन' में भाग लेना था, इसलिए सारी योजना सुखदेव से बनवाई थी।

दुर्गा भाभी के पति भगवतीचरण बोहरा का बम परीक्षण में बलिदान हो जाने पर आज़ाद उनके पुत्र शची के लिए चिंतित हो उठे। अभी तक दुर्गा भाभी द्वितीयक भूमिका निभाती रही थीं, जैसे—धन देना या एक बार भगत सिंह और राजगुरु को लाहौर से निकल भागने में सहायता करना। अब वह भी सक्रिय क्रांतिकारी भूमिका में कूद पड़ी थीं, जिससे आज़ाद शची के बारे में चिंतित थे। वह शची को सभी की संयुक्त जिम्मेदारी मानती थीं। जब भी वह कानपुर जातीं, मुसद्दीलाल के यहाँ ठहरतीं। कानपुर में होने पर आज़ाद भी वहाँ आ जाते, शची के साथ समय बिताते और अपने साथ ही सुलाते। वह उसे बहादुर बनाने के लिए रात को उसे दरवाजे तक अकेला भेज दिया करते। उसके सामने सभी पिस्तौलें रख उसे अपनी पसंद की चुनने को कहते। उसके लिए रोज एक आना की जलेबी खरीदकर लाया करते।

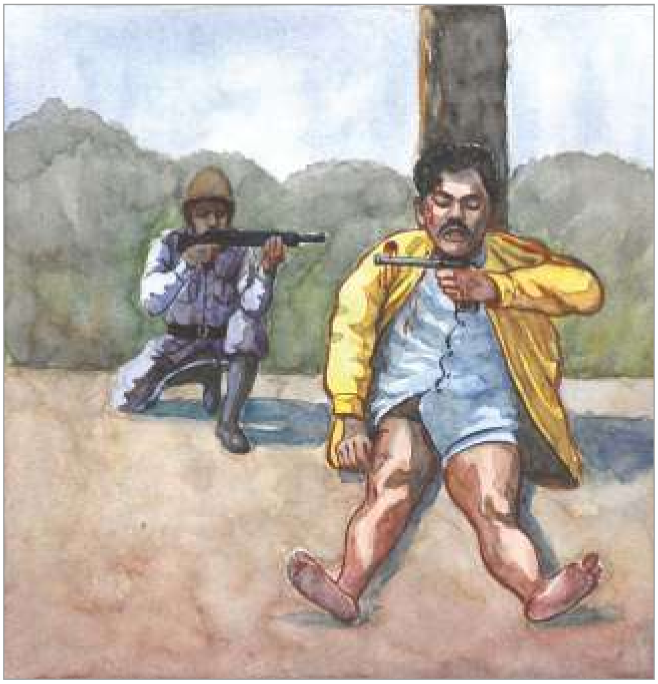

एक बार सड़क पर कुछ कॉलेज की छात्राओं को देखकर आज़ाद ने भगत सिंह से पूछा कि क्या उनमें से कोई लड़की भगत से विवाह करना चाहेगी तो उन्होंने उत्तर दिया, "मेरा विवाह तो आप ही निश्चित करोगे।" बाद में इस घटना को याद करते हुए आज़ाद ने गीली आँखों से वैशंपायन को कहा, "मैंने पहले ही उसका विवाह निश्चित कर दिया है। उसकी सगाई भी हो चुकी है। (उसे फाँसी की सजा हो चुकी है।) मुझे नहीं लगता मैं उसके विवाह में जा पाऊँगा। (उसके अंतिम संस्कार में भाग ले पाऊँगा।)' और यही सच भी हुआ।

अंत में हम उनके आत्मघाती होने का तथ्य जानने का प्रयास करते हैं। आज़ाद इलाहाबाद के एल्फ्रेड पार्क (अब आज़ाद पार्क) में पुलिस का सामना करते हुए बलिदान हो गए। ऐसा प्रचलित है कि उन्होंने अंतिम गोली स्वयं को मार ली और इस प्रकार उन पर आत्मघाती होने का आरोप लगा। लेकिन सत्य क्या है?

27 फरवरी, 1931 को पार्क के बाहर आज़ाद ने यशपाल और सुरेंद्र पांडे से विदा लेकर पार्क में प्रवेश किया, जहाँ सुखदेव राज पहले से ही उपस्थित थे। उन्हें लगा कि उन पर नजर रखी जा रही थी। तभी बाहर एक कार में ब्रिटिश अधिकारी नॉट बावर दो कांस्टेबल के साथ आया और उन पर पिस्तौल तान दी, जिसका उत्तर उन्होंने गोलियों से दिया। इससे पहले आज़ाद बावर पर सही निशाना लगा पाते, उसकी गोली उनकी दायीं जाँघ पर आ लगी। तभी एक और गोली उनके दाहिने कंधे पर आ लगी जो उनके फेफड़े को चीर गई और दायाँ हाथ बेकार कर गई। जामुन के पेड़ की ओट में किसी प्रकार पहुँचकर आज़ाद ने बायें हाथ से गोली चलाना जारी रखा और उनकी एक गोली बावर के हाथ में जा लगी। वह जान बचाने के लिए कार की ओर भागा तो आज़ाद ने गोली मारकर टायर पंक्चर कर दिया। अब वह मौलश्री के पेड़ के पीछे जा छिपा। अन्य पुलिसकर्मी नाले में कूद गए।

आज़ाद ने सुखदेव राज को भाग जाने को कहा, क्योंकि वह जाँघ घायल होने के कारण हिल नहीं सकते थे, जो उन्होंने किया। वहाँ डिप्टी सुपरिंटेंडेंट बिसेसर सिंह भी आ गया, जिसके जबड़े पर आज़ाद की गोली लगी। बिसेसर की गोली आज़ाद के सिर के दाहिनी ओर लगी, जिससे उनकी मृत्यु हो गई। बाबर ने भी आज़ाद की निशानेबाजी की प्रशंसा की है। सिर के दाहिनी ओर गोली लगने के कारण ही लोगों ने मान लिया कि उन्होंने अंतिम गोली से बलिदान कर दिया, जबकि उनके पास से 16 जीवित कारतूस बरामद किए गए थे। दाहिना हाथ बेकार होने के बाद वह किसी भी प्रकार सिर के दाहिनी ओर स्वयं को गोली नहीं मार सकते थे, दूसरा ऐसा करने पर वहाँ बाल व त्वचा जली पाई जाती, जो पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट में नहीं पाया गया। इस प्रकार वह किसी भी प्रकार से आत्मघाती नहीं थे और अंतिम श्वास तक उन्होंने युद्ध किया था। यही सत्य है।

गौरवगाथा : विजयनगर साम्राज्य और उसकी राजधानी हम्पी

भारत के स्वर्णिम इतिहास की गौरवशाली गाथाएँ इतिहास के पन्नों में अंकित हैं। तुंगभद्रा के तट पर बसी है एक प्राचीन नगरी, 'हम्पी', जो कभी विजयनगर साम्राज्य की राजधानी थी। किसी भी देश की परंपरा और संस्कृति को जानने के लिए वहाँ का इतिहास एक महत्वपूर्ण दस्तावेज होता है और हम्पी का इतिहास केवल पन्नों पर ही अंकित नहीं है, अपितु प्रत्यक्षदर्शी भी है। भारत में विभिन्न समय में अनेक साम्राज्यों की स्थापना होती रही है। इनमें से कुछ उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँचे और अंत में सदा के लिए विलीन भी हो गए। इनमें से कुछ ऐसे साम्राज्य भी हैं, जिनके अतुल्य वैभव और कला-कौशल ने उन्हें इतिहास में अमर बना दिया। विजयनगर का साम्राज्य इन्हीं साम्राज्यों में से एक है। हाँ! यह वही गौरवशाली भूमि है जिसके साथ हमारा एक गौरवशाली इतिहास जुड़ा हुआ है।

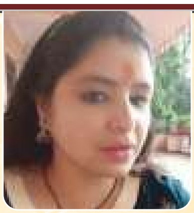

हेमा जोशी

शिक्षा : परास्नातक।

संप्रति : शिक्षक।

प्रकाशन : कवयित्री, लेखिका के विभिन्न आलेख और शोध-आलेख राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय जर्नल्स में प्रकाशित। एक काव्य-संग्रह प्रकाशनाधीन।

संपर्क : मोबाइल– 8810503857

ईमेल– hemanainwaljoshi@gmail.com

भारत के परम ऐश्वर्य की अनुभूति अगर करनी हो तो हम्पी (कर्नाटक) आपके लिए एक बेहतर विकल्प हो सकता है। अगर आप साहित्य प्रेमी हैं, कला प्रेमी हैं, संगीत प्रेमी हैं, पुरातत्व ज्ञान के अन्वेषी हैं या इतिहासवेत्ता हैं, तो यह स्थान यात्रा के लिए अत्यंत ही उत्तम है। घुमक्कड़ी ज्ञान के साथ-साथ आप यहाँ हमारे देश के प्राच्य विज्ञान, हमारी स्थापत्य कला, धर्म-संस्कृति, परंपराओं का अद्भुत सम्मिश्रण देख सकते हैं और यहाँ से बहुत-सी ऐतिहासिक-सांस्कृतिक जानकारियाँ भी प्राप्त कर सकते हैं। यहाँ पहुँचने के लिए निकटतम रेलवे स्टेशन 'होसपेट जंक्शन' और निकटतम हवाई अड्डा 'हुबली हवाई अड्डा' है और साथ ही सड़क मार्ग से 'हम्पी बस सेवा' या स्वयं के वाहन द्वारा भी यहाँ पहुँचा जा सकता है, तो आइए मेरे साथ हम्पी की इस सुखद मानसिक और शाब्दिक यात्रा के सहचर आप भी बनिए।

अपनी दक्षिण-भारत की शैक्षणिक यात्रा के दौरान मुझे भी इस स्थान के दर्शन का सुयोग प्राप्त हुआ और मेरे लिए यह किसी कौतूहल से कम नहीं था। बाल्यकाल से ही मैं तेनालीराम और कृष्णदेव राय की कहानियाँ सुनती आई थी और कॉमिक्स के रूप में भी मैंने तेनालीराम और उनके किस्सों को खूब पढ़ा था और कुछ समय बाद टेलीविजन पर तेनालीराम पर एक मनोरंजक कार्यक्रम (कार्टून के रूप में) बहुत प्रसिद्ध हुआ था। सभी बच्चों का वह पसंदीदा पात्र था और रहेगा।

बचपन से हम सभी राजा कृष्णदेव राय और तेनालीराम की कहानियाँ पढ़ते आ रहे हैं। तेनालीराम की हाजिर जवाबी जगप्रसिद्ध है। विजयनगर साम्राज्य के

सबसे प्रतापी राजा कृष्णदेव राय के दरबार में आठ दिग्गजों में तेनालीराम प्रमुख थे।

वैसे तो हम्पी के प्रमुख दर्शनीय स्थलों को तसल्ली से देखने के लिए दो दिन पर्याप्त हैं, पर आपके पास समय की जैसी सुविधा हो वैसा ही अपना कार्यक्रम बनाएँ। यहाँ अन्य ऋतुओं की अपेक्षा शरद ऋतु में भ्रमण करना अधिक श्रेयस्कर है। आप चाहें तो वहाँ के

दर्शनीय स्थलों के भ्रमण और विशेष जानकारियों के लिए किसी जानकार (गाइड) को भी अपने साथ रख सकते हैं और चाहें तो स्वयं भी घूम सकते हैं। साथ ही, गूगल बाबा तो विकल्प के रूप में उपलब्ध हैं हीं। हम्पी के बारे में मुझे कुछ जानकारियाँ पहले से ही थीं और बहुत सारी जानकारियाँ मुझे वहाँ जाने के बाद ही मिलीं। मैं इन सभी जानकारियों को आपके समक्ष इस वृत्तांत के माध्यम से साझा कर रही हूँ। आइए! सबसे पहले इसकी ऐतिहासिक गौरवगाथा के बारे में जानते हैं—

कर्नाटक राज्य में स्थित हम्पी को यूनेस्को द्वारा विश्व धरोहर सूची में सम्मिलित किया गया है। 'हम्पी' नाम कन्नड़ के 'हंपे' शब्द से पड़ा है, जो तुंगभद्रा के प्राचीन नाम 'पंपा' से निकलता है। वहाँ की लोकगाथाओं के अनुसार इस क्षेत्र की मातृदेवी पंपा देवी हैं, जिन्होंने भगवान विरुपाक्ष (शिव) को प्राप्त करने के लिए यहाँ कठिन तपस्या की थी। आज भी यह स्थान पंपा सरोवर के नाम से प्रसिद्ध है। राम की कथा में भी इस पंपा सरोवर का उल्लेख मिलता है। जहाँ सीता की खोज करते हुए भगवान श्री राम की सुग्रीव से भेंट हुई। यह स्थान प्राचीन काल में 'किष्किंधा क्षेत्र' के नाम से भी जाना जाता था। यहीं पर राम ने बालि को मारकर सुग्रीव को राजा बनाने के पश्चात भगवान शिव का चातुर्मास पूजन किया था। हमारी संस्कृति में प्राचीन काल से ही वर्षा ऋतु के प्रारंभ होने पर एक स्थान पर रुककर चार महीने तक पूर्ण समर्पण भाव से देवाधिदेव भगवान शिव का रुद्राभिषेक और पार्थिव पूजन किया जाता रहा है, जिसे 'चातुर्मास' कहा जाता है और यह परंपरा आज भी प्रचलित है। आज भी श्रावण मास से चातुर्मास-पूजन प्रारंभ कर देवाधिदेव महादेव को प्रसन्न करने और जगत-कल्याण हेतु इस विधान को किया जाता है।

विजयनगर साम्राज्य की स्थापना हरिहर और बुक्का नामक दो भाइयों ने सन् 1336 में की थी और अपने पिताजी के नाम पर 'संगम वंश' की स्थापना की। उस समय दिल्ली सल्तनत पर तुगलक वंश स्थापित था। संगम वंश के बाद सालुव वंश, फिर तुलुव वंश और फिर आरवीडू वंश स्थापित हुए। इनमें से तुलुव वंश में महाप्रतापी राजा कृष्णदेव राय हुए थे। इस्लामी बर्बर आक्रमणकारी बाबर ने भी अपनी तुजके-ए-बाबरी में उनकी प्रशंसा करते हुए कहा कि जब मैं भारत आया तो यहाँ के सबसे महत्वपूर्ण और शक्तिशाली राजा कृष्णदेव राय थे। राजा कृष्णदेव राय एक शक्तिशाली सम्राट थे। उन्होंने अपने शासनकाल में बहमनी साम्राज्य को हराकर रायचूर दोआब को भी अपने साम्राज्य में मिला लिया था और अपने समय में राज्य की सीमाओं का भी विस्तार किया।

विदेशी यात्रियों के यात्रा विवरणों में भी विजयनगर साम्राज्य के तत्कालीन समाज, धर्म, व्यापार, शासन संबंधी अनेक बातों की जानकारी हमें मिलती है। इटली देश के यात्री निकोलो ने इस साम्राज्य का सुंदर वर्णन किया है। पुर्तगाली राजपूतों के यात्रा विवरणों से भी तत्कालीन व्यापार व्यवस्था का परिचय मिलता है। विजयनगर के लेख अधिकतर ताम्रपत्रों पर प्राप्त हुए हैं, जिनमें दानकर्म का अधिक उल्लेख है। इससे वहाँ के शासकों के धार्मिक, सहृदय और दानी होने का भी पता चलता है। विजयनगर के सिक्कों पर शिव और नंदी की आकृति दिखाई पड़ती है और कहीं-कहीं लक्ष्मी के चिह्न भी मिलते हैं। इससे वहाँ शैव और वैष्णव दोनों संप्रदायों के प्रचलन की जानकारी मिलती है। यद्यपि वहाँ के राजा शैव भक्त ही रहे। शैव की तरह वैष्णव मत को राजाश्रय प्राप्त नहीं था।

इस काल में संस्कृत और तेलुगू साहित्य पर अनेक रचनाएँ हुईं। प्रचुर मात्रा में साहित्य लिखा गया। इस साम्राज्य के आचार्य सायण ने वेदों पर भाष्य लिखा और उनके भ्राता मध्वाचार्य ने धर्म-शास्त्र तथा वेदांत पर अनेक पुस्तकों की रचना की। मध्वाचार्य ने ब्रह्म-संप्रदाय

(द्वैतवाद) की भी स्थापना की। महाप्रतापी राजा कृष्णदेव राय ने राजनीति पर 'आमुक्त माल्यम' नामक ग्रंथ लिखा। यह जानकर आश्चर्य होता है कि उस समय की स्त्रियाँ भी साहित्य रचना में प्रवीण थीं। तेलुगू भाषा में कंबन की स्त्री गगदेवी ने 'मधुरा विजयम' और 'कंबन चरित्र' जैसे महाकाव्य की रचना की, जिसमें म्लेच्छों के परास्त होने के प्रमाण उपस्थित हैं।

विजयनगर साम्राज्य के कारण दक्षिण भारत में हिंदुओं की शक्ति अक्षुण्ण रही। हिंदू धर्म और उसकी सनातन परंपरा का जैसा विकास दक्षिण में हुआ, वैसा उत्तर भारत में गुप्त साम्राज्य को छोड़कर कभी भी नहीं हुआ।

बने इन मंदिरों की स्थापत्य-कला, वास्तुकला अद्भुत है और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से पूर्णतया परिपक्व भी। द्रविड़ शैली की प्रमुख विशेषताओं में प्राकार (चारदीवारी), गोपुरम (प्रवेश द्वार), वर्गाकार या अष्टकोणीय गर्भगृह (रथ), पिरामिडनुमा शिखर, मंडप (नंदी मंडप), विशाल संकेंद्रित प्रांगण तथा अष्टकोण मंदिर संरचना शामिल हैं। ऐसी अद्भुत कलात्मक संरचनाओं को देख आप आश्चर्यचकित और मंत्रमुग्ध हो सकते हैं।

यहाँ ग्रेनाइट के बड़े-बड़े टीले दूर-दूर तक फैले हुए दिखाई पड़ते हैं। ये ग्रेनाइट के पत्थर एक-दूसरे के ऊपर इस प्रकार टिके हुए हैं जैसे लगता है कि फेविकोल या गोंद से चिपकाए गए हैं और ध्यान से

हम गौरवशाली भारत की संतानें हैं। हमारा देश सोने की चिड़िया यूँ ही नहीं कहलाता था। इटली और पुर्तगाल से आने वाले अनेक व्यापारियों ने अपने यात्रा-वृत्तांतों में विजयनगर साम्राज्य के अतुल्य वैभव का वर्णन किया है। वे बताते हैं कि उस समय राज्य के राजकोष में बहुमूल्य रत्नों, हीरे-जवाहरातों के ढेर तो रहते ही थे, वहाँ की धरती के अंदर पिघला हुआ सोना बहुतायत में था। विजयनगर को एक धनी समृद्धशाली और वैभवशाली साम्राज्य के रूप में देखा जाता था। यह भी कहा जाता है कि यहाँ विरुपाक्ष (भगवान शिव) के मंदिर के आँगन में हीरों का व्यापार हुआ करता था। इन हीरों को खरीदने देश-विदेश के बड़े-बड़े व्यापारी यहाँ आया करते थे। राजधानी हम्पी आज भी अनेक अवशेषों के साथ हमारे उस वैभवशाली इतिहास को बयाँ करती है।

हम्पी आज एक ऐतिहासिक दर्शनीय स्थल के रूप में प्रसिद्ध है। यहाँ 500 से भी अधिक प्राचीन मंदिर अवस्थित हैं। यहाँ के प्रसिद्ध मंदिरों में विट्ठलनाथ का मंदिर, विरुपाक्ष मंदिर, लक्ष्मी नरसिंह मंदिर, हजाराराम मंदिर और रघुनाथ स्वामी मंदिर प्रमुख हैं। द्रविड़ शैली में

देखने पर उनमें कुछ आश्चर्यजनक आकृतियाँ उभरती हुई नजर आती हैं। इन बड़े-बड़े पत्थरों के टीलों पर आज भी बंदर उछल-कूद करते हुए नजर आ जाते हैं, जो सहज ही उसके प्राचीन समय (किष्किंधा) की याद दिला जाते हैं। उस समय भी यह वानरों का ही क्षेत्र था। मैंने इन चट्टानों के उतंग शिखरों पर वानरों की टोली को उछल-कूद करते हुए देखा तो मन में हनुमान जी का स्मरण हो आया। यहाँ 'मतंग पर्वत' नाम से आज भी सुप्रसिद्ध पर्वत है, जिसका नाम 'मतंगऋषि' के नाम पर है। तुंगभद्रा के तट के दायीं ओर विरुपाक्ष मंदिर अवस्थित है, जिसका निर्माण महाराज कृष्णदेव राय ने उस कालखंड में कराया था। यह अद्भुत मंदिर स्थापत्य कला में भी बेजोड़ है।

हम्पी में चहुँदिश बड़े ही विहंगम दृश्य दिखलाई पड़ रहे थे और मैंने इन दृश्यों को अपने कैमरे में सुरक्षित कर लिया। विट्ठल मंदिर के म्यूजिकल पिलर्स यानी संगीतमय स्तंभों ने और विरुपाक्ष मंदिर के सामने प्रांगण में पत्थर के बने विशाल रथ ने मुझे बहुत आकर्षित किया। विजयनगर के साम्राज्य के वैभव के बारे में लिखने बैठें तो एक पुस्तक भी कम है। इस वृत्तांत में मैंने संक्षिप्त विवरण ही प्रस्तुत किया है।

हम्पी में तुंगभद्रा के तट पर मैंने कुछ अलग प्रकार के बेर (खाने वाला फल) देखे। बेर बेचने वाले जोर-जोर से चिल्लाते हुए उन बेरों की विशेषता बता रहे थे। ये बेर उत्तर भारत में मिलने वाले बेरों से भिन्न प्रकार के थे। आकृति में भी और स्वाद में भी ये बिलकुल अलग थे। तुंगभद्रा के जल में डूबे हुए विशालकाय ग्रेनाइट के पत्थरों पर बैठकर मीठे-मीठे बेरों को खाने का आनंद ही कुछ और है।

तुंगभद्रा के जल के स्पर्श मात्र से ऐसी गौरवानुभूति होती है कि आप अपने वर्तमान को भूलकर उस 14वीं सदी में सहज ही प्रवेश कर जाते हैं और आपकी आँखों के सम्मुख वहाँ की समृद्धता, कला, संस्कृति, राजभवन, बाजार और अपार वैभव की स्मृतियाँ तैरने लगती हैं, जिससे हृदय में परमानंद की अनुभूति होती है। तुंगभद्रा के तट पर चहलकदमी करते हुए अनायास ही मुझे मेरे पसंदीदा कविवर निराला की ये पंक्तियाँ याद आ गईं और हृदय गुनगुनाने लगा, “बाँधो न नाव इस ठाँव बंधु, पूछेगा सारा गाँव बंधु, बाँधो न नाव...।” वहाँ कई यात्री नौकायन का लाभ भी ले रहे थे। तट के किनारे लगी कई दुकानों में भगवान बुद्ध की छोटी-बड़ी, सुंदर-सुंदर मूर्तियाँ बिक्री हेतु उपलब्ध थीं, जिससे यह प्रतीत हुआ कि किसी-न-किसी समय इस क्षेत्र पर बौद्ध धर्म का प्रभाव भी रहा होगा। मैंने भी भगवान बुद्ध की एक छोटी-सी संगमरमर की प्रतिमा खरीदी। जैसे ही उस प्रतिमा को हथेली पर रखा तो लगा कि बुद्ध मुझे देख मुस्कुरा रहे हैं। यह एक स्वानुभूति थी, जिसके पीछे कई कारण हो सकते थे।

उस वातावरण से मेरे हृदय में उल्लास की रागनियाँ बज रही थीं और साथ-ही-साथ मस्तिष्क में अनेक प्रश्न भी हिलोरे मार रहे थे। आखिरकार, इतने शक्तिशाली, समृद्धशाली साम्राज्य के पतन के पीछे क्या कारण रहे होंगे? किसके द्वारा विजयनगर जैसा शक्तिशाली साम्राज्य खंडहरों में परिणित हो गया? इतनी उन्नत और वैभवशाली सभ्यता कैसे काल के गाल में समा गई? इस यात्रा के पश्चात मुझे अपने सभी प्रश्नों के उत्तर मिल गए। (अथातो घुमक्कड़ जिज्ञासा)

पुर्तगालियों का आगमन और प्रभाव, राजा कृष्णदेव राय की मृत्यु के पश्चात अयोग्य उत्तराधिकारियों का होना और तालीकोटा का युद्ध आदि ऐसे अनेक कारण हैं, जिनसे विजयनगर साम्राज्य का पतन हुआ।

सन् 1565 में तालीकोटा के युद्ध के परिणामस्वरूप दक्कन की सल्तनतों ने मिलकर एक गठबंधन बनाया और सामूहिक रूप से विजयनगर पर धावा बोल दिया। इस युद्ध में विजयनगर की हार हुई। तब इन म्लेच्छ आक्रांताओं ने यहाँ भारी तबाही मचाई और इस साम्राज्य को मिलकर तहस-नहस कर डाला और यहाँ भारी लूटपाट मचाई। नगर-के-नगर जला दिए गए। लगभग 300 साल तक (1336 से 1646 तक) स्थापित इस साम्राज्य को म्लेच्छ आक्रांताओं द्वारा तहस-नहस कर दिया गया। आज भी यहाँ स्थित खंडहर उस भीषण अत्याचार की कहानी कहते हैं, परंतु साथ ही गर्व की अनुभूति भी कराते हैं कि वे ये सब सहकर आज तक अपना अस्तित्व बचाए हुए हैं। हमें गर्व होना चाहिए ऐसे वैभवशाली इतिहास पर और हो भी क्यों न!

अभी हाल ही में हमारे देश के तत्कालीन माननीय उपराष्ट्रपति वेंकैया नायडू हम्पी की यात्रा पर गए थे। इस यात्रा का मुख्य उद्देश्य यही था कि हम्पी को किस तरह और बेहतर ढंग से संरक्षित और सुरक्षित किया जाए, जिससे कि हमारी आगामी भावी पीढ़ी के लिए भी हम इन अमूल्य धरोहरों को सुरक्षित कर सकें। हम्पी के विकास के लिए क्या-क्या कार्य किए जा सकते हैं? क्या-क्या सुविधाएँ जुटाई जा सकती हैं? ताकि यहाँ आने वाले पर्यटकों को किसी भी प्रकार की कोई परेशानी न हो। समस्त देशवासी यहाँ सहजता से पहुँचकर अतुल्य भारत के उस गौरवशाली इतिहास को जान सकें और गर्व का अनुभव कर सकें।

आप भी यदि हम्पी जाने का मन बना रहे हैं तो अवश्य जाएँ और जो भ्रमण करके आएँ हैं, वे इसके गौरवशाली इतिहास को दूसरों से अवश्य साझा करें और हम्पी की यात्रा के लिए प्रेरित करें। सच मानिए हम्पी की यह यात्रा आपके मन-मस्तिष्क में उल्लास, गर्व और सकारात्मक तरंगों का संचरण करेगी।

बुंदेलखंड के विस्मृत शहीद नारायण दास खरे

"जनता के पास सिद्धांत ले जाना राजनैतिक भूल और असफलता को निमंत्रण देना है। जनता अपने सिद्धांत को जानती है और मानती है, पर कड़ी तपस्या के बाद ही वह किसी पर विश्वास करती है। वह धोखा न देना चाहती है और न उसकी गुंजाइश भी दूसरे को देगी। आपके बारे में वह अपनी राय रखती है, आपका निरीक्षण भी करती है। वह आपके लिए मानसिक व भौतिक बातों में सीआईडी का काम करती है। सावधान रहो! लंबे समय और तपस्या के बाद संतोष होगा।"

यह उस पत्र का अंश है जिसे शेरे-बुंदेलखंड नारायण दास खरे ने 19 मार्च, 1943 को ओरछा सेवा संघ के लिए लिखा था, जिसका जिक्र स्वतंत्रता सेनानी श्यामलाल साहू ने स्वतंत्रता की रजत जयंती पर (15 अगस्त, 1973) 'नारायण दास खरे के प्रति श्रद्धांजलि' पुस्तक के प्रकाशन में किया था। शेरे-बुंदेलखंड से नवाजे गए स्वतंत्रता सेनानी नारायण दास खरे का जन्म झाँसी जिले के दलवारा गाँव में 14 फरवरी, 1918 में हुआ था। इसके बाद उनका परिवार टीकमगढ़ आ गया और पुरानी टेहरी में रहने लगा, लेकिन बचपन में ही उनके माँ-बाप का निधन हो गया। इसके बाद उनका लालन-पालन उनके काका पारीक्षत द्वारा हुआ। स्वतंत्रता सेनानी लालाराम वाजपेई अपनी आत्मकथा में लिखते हैं, "तब नारायण दास खरे हाई स्कूल के विद्यार्थी थे, टीकमगढ़ निवास काल के दौरान उनकी मुलाकात नारायण दास खरे से हुई। टीकमगढ़ रियासत में कांग्रेस का काम कैसे शुरू किया जाए, वहीं बैठकर नारायण दास खरे के साथ योजनाएँ बनाई गईं। अपने परिवार का संचालन करने के लिए वे दूसरों के घरों में ट्यूशन पढ़ाने जाया करते थे।"

डॉ. नरेंद्र अरजारिया

शिक्षा : पी-एच.डी.।

संप्रति : 30 वर्षों से पत्रकारिता एवं स्वतंत्र लेखन।

प्रकाशन : चार पुस्तकें–शिवधाम सरसेड; माँ कालका; कोरोना, राजनीति, पलायन और मीडिया; स्प्रिंगर प्रकाशित।

सम्मान : गोपाल भाई स्मृति सम्मान, पंडित बनारसी दास चतुर्वेदी सम्मान, शब्द ऋषि सम्मान।

संपर्क : मोबाइल– 9425304474

ईमेल– n.arjariya@gmail.com

स्वतंत्रता आंदोलन और नारायण दास खरे

नारायण दास खरे का जीवन बाल्यकाल से ही कष्टों से भरा रहा। बचपन में माँ-बाप को खोने के बाद चाचा-चाची ने इनका लालन-पालन किया। हाई स्कूल के विद्यार्थी रहते हुए वे स्वतंत्रता आंदोलन में कूद गए। पहले सत्याग्रह आंदोलन में भाग लिया। सत्याग्रही इनके घर ठहरे, इस कारण इनके भाई को सरकारी नौकरी से हाथ धोना पड़ा। वह सन् 1935 में टीकमगढ़ जिले के जतारा में हुई पटवारी हड़ताल में शामिल हुए, जिसके चलते इनके चाचा श्री पारीक्षत को सरकारी नौकरी से हटा दिया गया। इस कारण इनके परिवार के जीवनयापन की समस्या उत्पन्न हो गई।

बुंदेलखंड में सन् 1937 में ओरछा राज्य कांग्रेस संगठन का आरंभ हुआ। 30 सितंबर, 1937 को टीकमगढ़ में प्रथम झंडा सत्याग्रह का आयोजन किया गया, जिसमें नारायण दास खरे शामिल हुए और उनकी खूब पिटाई

हुई, इसके चलते उनकी पढ़ाई छूट गई। सन् 1938 में टोड़ी फतेहपुर और सन् 1939 में हैदराबाद सत्याग्रह में शामिल होने के कारण उन्होंने छह-छह माह की जेल काटी। ओरछा राज्य में नारायण दास खरे सत्याग्रह के अंतर्गत जन संगठन और आंदोलन के संचालन में जुट गए। इसी से भयभीत होकर नरोसा नाले पर 01 दिसंबर, 1947 को गोली मारकर उनकी हत्या कर दी गई।

> **"स्वतंत्रता सेनानी नारायण दास खरे बड़ागाँव धसान में 30 नवंबर, 1947 को देखे गए थे। उसके बाद उनका कोई पता नहीं चला था। स्वतंत्रता सेनानी श्यामलाल साहू अपनी पुस्तक 'श्रद्धांजलि' में लिखते हैं, "01 दिसंबर, 1947 को नारायण दास खरे बड़ागाँव धसान से टीकमगढ़ साईकिल पर आ रहे थे, तभी एक समाज के लोगों ने उन्हें बंदूक और कुल्हाड़ी से मार दिया।""**

स्वतंत्रता सेनानी भगवानदास माहौर अपनी आत्मकथा में नारायण दास खरे का वर्णन करते हुए लिखते हैं, "जब वे टीकमगढ़ में रहते थे और ग्रामीण अंचलों में जनसभाएँ करने जाते थे तो जमींदारों द्वारा उनकी सभाओं में पत्थर फेंके जाते थे, जबकि नारायण दास खरे मंच से लोगों को बैठे रहने की अपील करते थे।" वह लिखते हैं, "भुसावल बमकांड में आठ साल की सजा काटने के बाद जेल से बाहर आया तो कांग्रेस में सम्मिलित हो गया। उसी समय मेरी मुलाकात शेरे-बुंदेलखंड नारायण दास खरे से हुई थी। चंद्रशेखर आज़ाद देश की आज़ादी के लिए साम्राज्यवादियों की गोली खाकर शहीद हुए। नारायण दास खरे गरीब किसान प्रजा की आज़ादी के लिए जमींदार राजाशाही की गोली खाकर शहीद हुए। दोनों की शहादत मुझे एक-सी लगी। चंद्रशेखर आज़ाद को कीर्ति अधिक मिली, लेकिन नारायण दास खरे को बहुत कम। यह केवल परिस्थितियों के फेर की बात है।"

30 नवंबर, 1947 को लापता हुए थे नारायण दास खरे

स्वतंत्रता सेनानी नारायण दास खरे बड़ागाँव धसान में 30 नवंबर, 1947 को देखे गए थे। उसके बाद उनका कोई पता नहीं चला था। स्वतंत्रता सेनानी श्यामलाल साहू अपनी पुस्तक 'श्रद्धांजलि' में लिखते हैं, "01 दिसंबर, 1947 को नारायण दास खरे बड़ागाँव धसान से टीकमगढ़ साईकिल पर आ रहे थे, तभी एक समाज के लोगों ने उन्हें बंदूक और कुल्हाड़ी से मार दिया। आरोपियों को 30 नवंबर, 1947 को मालूम हो चुका था कि नारायण दास खरे सुबह टीकमगढ़ जाएँगे। सबसे पहले उन्हें गोली मारी गई, जिससे वे गिर पड़े, फिर दूसरे आरोपियों ने कुल्हाड़ी से उनकी जीवनलीला समाप्त कर दी। लाश और साईकिल को आरोपियों ने वहीं छिपा दिया। फिर घटना के बाद आरोपियों ने बैलगाड़ी ले जाकर लाश व साईकिल वहाँ से हटा दी और जमड़ार नदी की रेत में दबा दी। घटना के छह दिन बाद आरोपी पुनः घटना स्थल पहुँचे और लाश के टुकड़े-टुकड़े कर उसे धसान नदी में बहा दिया। उनकी लाश के सिर्फ नीचे का हिस्सा पुलिस को मिला था। इसके बाद 18 मार्च, 1948 को किले के मैदान में शोक सभा का आयोजन किया गया, जिसमें तत्कालीन ओरछा स्टेट के प्रधानमंत्री लालाराम वाजपेई और तमाम स्वतंत्रता सेनानी शामिल हुए।

टीकमगढ़ के वरिष्ठ पत्रकार राजेन्द्र अध्वर्यु कहते हैं कि स्वतंत्रता संग्राम सेनानी अमर शहीद नारायण दास खरे की हत्या स्वाधीनता के तत्काल बाद वर्ष 1947 में हुई थी। महाराज वीरसिंह जू देव इलाज के सिलसिले में बंबई में थे। उस समय ओरछा राज्य में अंतरिम सरकार का गठन हो चुका था और अंतरिम सरकार के प्रधानमंत्री पद पर लालाराम वाजपेई थे, जो हनुमान चालीसा के पास चंद भवन कोठी में रहा करते थे और उसके सामने हनुमान चालीसा के बगल में शिकार लाइन थी। इसमें सिपाहियों के रहने के लिए बैरक बने हुए थे।

नारायण दास की हत्या की जानकारी मिलने पर महाराज वीरसिंह जू देव तत्काल मुंबई से अपनी सौलह सिलेंडर गाड़ी से टीकमगढ़ आ गए और उन्होंने घटना की जानकारी लेने के बाद आरोपियों के विरुद्ध कार्यवाही की बात कही, जिससे हत्या के साजिशकर्ता और उसमें शामिल लोग भयभीत हो गए। शिकारगाह लाइन बैरकों में ठहरे आरोपी चाचा-भतीजे को कुछ जानकारी मिली की एक-दो दिन के भीतर उनकी गिरफ्तारी हो सकती है। इस कारण उन्होंने एक-दूसरे को गोली मार दी और नारायण दास खरे की हत्या का मुख्य आरोपी जयंत ओरछा राज्य की सीमा छोड़कर अन्यत्र चला गया। उस पर पूरा मुकदमा चला।

इस हत्या के साजिशकर्ता जयंत हत्या के बाद विक्षिप्त हो गया और 'तुम्हें नहीं छोड़ूँगा' नारायण दास चिल्लाते हुए मरा। स्वाधीनता के बाद नारायण दास खरे की पत्नी मानकुंवर देवी पुरानी टेहरी मुहल्ले में रहा करती थीं। उनकी बेटी और परिवार की किसी सरकार ने कोई मदद नहीं की। उनके जीवनकाल में स्वर्गीय नारायण दास खरे की प्रतिमा अस्पताल चौराहे पर जनता द्वारा चंदा करके लगाई गई, जिसका पहले विरोध हुआ। इस बार भी वह मूर्ति नहीं लग सकी। आज भी वह मूर्ति एक स्थान पर सुरक्षित रखी हुई है। वर्ष 2000 में तत्कालीन खजुराहो सांसद सत्यव्रत चतुर्वेदी की पहल पर अस्पताल चौराहे पर नगर पालिका द्वारा नारायण दास खरे की प्रतिमा स्थापित की गई।

वर्तमान में परिजन

टीकमगढ़ के वरिष्ठ पत्रकार प्रदीप खरे कहते हैं कि नारायण दास खरे की एकमात्र पुत्री स्वराज थीं, जिनका एक बेटा अशोक है। यानी नारायण दास खरे का नाती अशोक अपने परिवार सहित टीकमगढ़ शहर के पुरानी टेहरी में निवास करते हैं, जो पल्लेदारी और हाथ ठेला चलाकर के अपने परिवार का भरण-पोषण कर रहे हैं।

सत्येंद्रनाथ बोस और मातृभाषा में विज्ञान

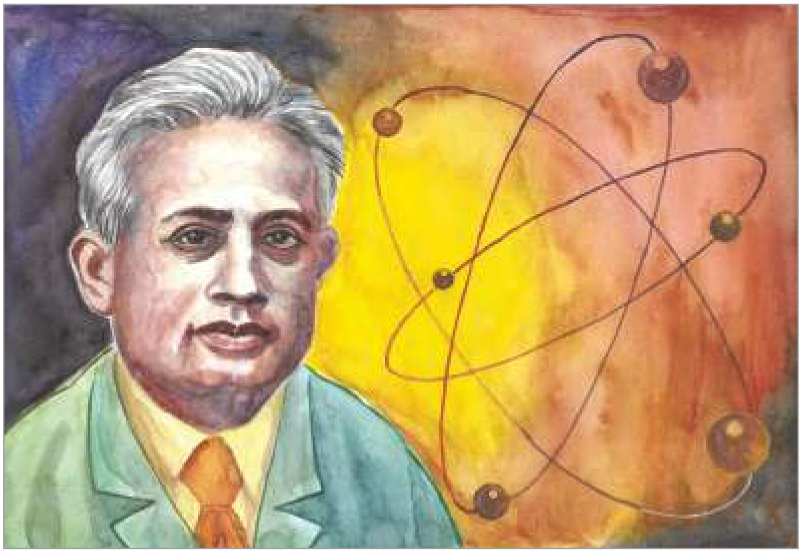

विज्ञान सदा से ही मानव जीवन के विकास का महत्वपूर्ण कारक रहा है। एक बार गांधीजी ने कहा था कि किसी भी व्यक्ति के बौद्धिक विकास के लिए मातृभाषा का ज्ञान उतना ही आवश्यक है, जितना कि एक शिशु के शरीर के विकास के लिए माता का दूध। विज्ञान का लोक प्रसार भी मातृभाषा के बिना संभव नहीं है। भारत के महान भौतिक विज्ञानी और गणितज्ञ प्रोफेसर सत्येंद्रनाथ बोस का भी यही मानना था, क्योंकि वे ताउम्र विज्ञान और अपनी मातृभाषा दोनों के प्रति निष्ठावान रहे। एक समृद्ध बंगाली सांस्कृतिक परंपरा, ब्रिटिश-भारतीय राजनीति और यूरोप में दो वर्षों तथा देश में दशकों की सतत् वैज्ञानिक साधना ने प्रोफेसर सत्येंद्रनाथ बोस को जहाँ एक ओर क्वांटम सांख्यिकी का प्रवर्तक बनाया, वहीं अपनी मातृभूमि कलकत्ता और मातृभाषा बांग्ला से अथाह प्रेम ने विज्ञान की आदिकालीन भारतीय परंपरा के पुनर्जागरण की दिशा में कुछ कर गुजरने का जुनून पैदा किया।

बोस-आइंस्टीन सांख्यिकी और संघनन सिद्धांतों तथा बोसोन और हिग्स-बोसोन कणों के लिए विश्वविख्यात पद्मविभूषण से सम्मानित, बहुमुखी प्रतिभा के धनी प्रो. सत्येंद्रनाथ बोस गणित और भौतिकी के साथ-साथ रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान, मृदा विज्ञान, खनिज विज्ञान, दर्शन, ललित कला, पुरातत्व, साहित्य, संगीत और भाषाओं जैसे विविध क्षेत्रों में निष्णात थे। एक प्राध्यापक एवं वैज्ञानिक होने के रिश्ते से बोस मातृभाषा में विज्ञान-शिक्षा के पक्षधर थे। विज्ञान और मातृभाषा के लिए इस अप्रतिम अनुराग के पीछे कलकत्ता का वो संभ्रांत और बुद्धिजीवी बोस परिवार था, जिसके इकलौते बेटे होने का सौभाग्य सत्येंद्रनाथ को प्राप्त हुआ था। ब्रिटिश सरकार में लेखाकार के पद पर कार्यरत रहे अपने दादा अंबिकाचरण बोस और ईस्ट इंडिया रेलवे के कार्यकारी इंजीनियरिंग विभाग में कार्य करने वाले पिता सुरेंद्रनाथ बोस से गणित और विज्ञान बालक सत्येंद्रनाथ को आनुवंशिक रूप से मिले थे। वहीं कलकत्ता के प्रसिद्ध वकील और गैहाटी के जमींदार मोतीलाल रॉय चौधरी की बेटी अमोदिनी देवी के रूप में अपनी माता के बांग्लाभाषा रूपी रक्त का विदुषत्व भी सत्येंद्रनाथ में प्रवाहित था। इस तरह सत्येंद्रनाथ बोस का अवतरण मानो भारत में विज्ञान और मातृभाषा के प्रसार के उद्देश्य से ही हुआ था।

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में भारत में आधुनिक विज्ञान के प्रणेता आचार्य प्रफुल्ल

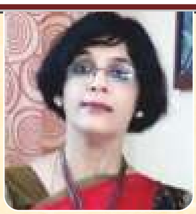

डॉ. शुभ्रता मिश्रा

एक स्वतंत्र लेखिका हैं। 'विज्ञान प्रगति' एवं 'आविष्कार' जैसी अन्य पत्रिकाओं में उनके विज्ञान लेख नियमित प्रकाशित होते रहते हैं।

प्रकाशित पुस्तकें : भारतीय अंटार्कटिक संभारतंत्र, अंतरराष्ट्रीय हिंद महासागर अभियान : स्वर्णिम पचास वर्ष, अंटार्कटिका : भारत की हिमानी महाद्वीप के लिए यात्रा।

सम्मान : मध्य प्रदेश युवा वैज्ञानिक पुरस्कार (1999), राजीव गांधी ज्ञान-विज्ञान मौलिक पुस्तक लेखन पुरस्कार-2012 (2014 में प्रदत्त), वीरांगना सावित्रीबाई फुले राष्ट्रीय फेलोशिप सम्मान (2016), नारी गौरव सम्मान (2016)।

संपर्क : मोबाइल– 8975245042
ईमेल– shubhrataravi@gmail.com

चन्द्र रे के विज्ञान, देश और मातृभाषा के प्रति समर्पण ने उस दौर के बच्चों, किशोरों और युवाओं को कहीं बहुत गहरे प्रभावित किया हुआ था। आचार्य रे ने स्वदेशी आंदोलन के तहत सन् 1892 में जब बंगाल केमिकल एंड फार्मास्युटिकल वर्क्स की शुरुआत की थी, तभी सत्येंद्रनाथ के पिता सुरेंद्रनाथ बोस ने भी 'इंडियन केमिकल एंड फार्मास्युटिकल वर्क्स' नामक अपनी छोटी-सी कंपनी स्थापित की थी। उसी दौर में 01 जनवरी, 1894 को सत्येंद्रनाथ बोस का जन्म हुआ और धीरे-धीरे विज्ञानमय वातावरण में सत्येंद्र बड़े होने लगे। पाँच साल के कुशाग्र बुद्धि वाले सत्येंद्र की विधिवत स्कूली शिक्षा की शुरुआत जोरबागान के उस स्कूल से हुई, जिसमें कभी रवींद्रनाथ टैगोर भी बचपन में पढ़े थे। स्कूल के साथ-साथ घर पर गणित की शिक्षा स्वयं उनके पिता दिया करते थे।

ब्रिटिश शासन के दौरान सन् 1905 में तत्कालीन वायसराय लॉर्ड कर्जन द्वारा किए गए बंगाल विभाजन का असर मात्र 11 वर्ष के छात्र सत्येंद्रनाथ पर बहुत गहरा पड़ा था। उन दिनों उन्होंने अपने पिता के स्वदेशी आंदोलन के प्रति समर्पण को बहुत निकट से देखा और अनुभव किया था। हालाँकि, पिता की इच्छा का मान रखते हुए वे कभी भी स्वदेशी आंदोलन और स्कूल एवं कॉलेज जीवन के दौर में भारत के स्वतंत्रता आंदोलनों से प्रत्यक्ष रूप से जुड़े हुए नहीं दिखाई दिए, लेकिन इन राष्ट्रीय आंदोलनों ने किसी-न-किसी रूप में उनके जीवन को प्रभावित किया था। यही कारण था कि उन्होंने अपना जीवन विज्ञान के लिए समर्पित करने का संकल्प लिया, जिसके माध्यम से वे देश की सेवा कर सकें।

सत्येंद्रनाथ बोस ने कलकत्ता के हिंदू स्कूल से अपनी स्कूली शिक्षा और प्रेसीडेंसी कॉलेज से सन् 1909 में उच्च शिक्षा प्राप्त की थी। इस दौरान बोस ने कई भाषाओं और विषयों के अध्ययन किए। सत्येंद्रनाथ बोस बांग्ला के अलावा संस्कृत, अंग्रेजी, फ्रेंच और जर्मन भाषाओं में भी पारंगत थे। उन्होंने इन भाषाओं में उपलब्ध लगभग सभी विषयों की किताबें पढ़ीं, जिनमें साहित्य और विज्ञान भी शामिल थे। बोस किशोरावस्था में कविवर रवींद्रनाथ टैगोर की 'बिचित्र' के नाम से आयोजित होने वाली साहित्यिक बैठकों में शामिल होते थे। हालाँकि, यहाँ उनकी भूमिका एक सक्रिय प्रतिभागी की तुलना में एक मूक श्रोता की अधिक होती थी। लगभग उसी दौर में 'सीधी परंपरा' नामक एक पत्रिका निकलनी शुरू हुई, जिसके पहले अंक में बोस ने बांग्ला में एक लेख 'विज्ञान में संकट' विषय पर लिखा था और इसी में उनका दूसरा लेख 'आइंस्टीन' पर छपा था। इस तरह बांग्ला में विज्ञान लेखन की बोस की यात्रा किशोरावस्था से शुरू हो गई थी।

सत्येंद्रनाथ बोस बी.एस-सी. की पढ़ाई करते हुए अपने मित्र जीवनतारा हलदर के साथ गुप्त रूप से मजदूर वर्ग के बच्चों के लिए रात्रि विद्यालय चलाने में सक्रिय भाग लेते थे। इसका संबंध श्री अरबिंद घोष और बारिन घोष के एक सहयोगी द्वारा स्थापित संस्थान से था, जिसे 'वर्किंग मेंस इंस्टीट्यूट' के नाम से जाना जाता था। इसी संस्थान के अंतर्गत कलकत्ता के मानिकटोला स्ट्रीट में केशब अकादमी में कक्षाएँ चलाई जाती थीं। इन कक्षाओं में सत्येंद्रनाथ बोस अपने दूसरे युवा साथियों के साथ मिलकर विज्ञान विषयों को अंग्रेजी के साथ-साथ बांग्ला भाषा में भी पढ़ाते थे। एम.एस-सी. होने के बाद बोस ने कोलकाता विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य शुरू किया था। साथ-ही-साथ सत्येंद्रनाथ बोस ने आइंस्टीन के सापेक्षता के सिद्धांत में अपना शोध भी शुरू किया। इसके लिए बोस ने फ्रेंच और जर्मन भाषा में लिखीं 'गिब्बस' और 'प्लांक' की पुस्तकें पढ़ना शुरू कीं। बोस ने दोनों भाषाओं को न केवल अतिशीघ्र सीखा था, बल्कि उन्होंने इन भाषाओं में लिखी कविताओं का बांग्ला भाषा में अनुवाद भी किया था। मैक्स प्लैंक द्वारा लिखी गईं भौतिकी की उत्कृष्ट पुस्तकों के अध्ययनों ने बोस को विद्युत चुंबकत्व और सापेक्षता के सिद्धांतों में विशेषज्ञता दिलाई।

सत्येंद्रनाथ बोस और मेघनाथ साहा का एक संयुक्त शोधपत्र सन् 1918 में लंदन की 'फिलॉसोफिकल मैगजीन' में प्रकाशित हुआ था। उनके अगले दो शोधपत्र सन् 1919 और सन् 1920 में 'बुलेटिन ऑफ द कलकत्ता मैथमैटिकल सोसाइटी' में प्रकाशित हुए थे, जो 'द स्ट्रेस इक्वेशन ऑफ इक्विलिब्रियम' और 'द होर्पोल होड' पर थे। ये दोनों पेपर विशुद्ध रूप से गणितीय समस्याओं पर आधारित थे। इसी तरह सन् 1920 में 'द डिडक्शन ऑफ रिडबर्ग्स लॉ फ्रॉम द क्वांटम थ्योरी ऑफ स्पेक्ट्रल एमिशन' पर बोस का पेपर फिलॉसोफिकल मैगजीन में प्रकाशित हुआ था। इन शोधपत्रों से बोस के असाधारण गणितीय ज्ञान का आभास होता है। इसी बीच सत्येंद्रनाथ बोस और मेघनाथ साहा ने मिलकर सन् 1920 में सापेक्षतावाद पर अल्बर्ट आइंस्टीन और

हरमन मिंकोवस्की के जर्मन भाषा में लिए गए कुछ शोधपत्रों का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया। उनका यह कार्य 'द प्रिंसिपल ऑफ रिलेटिविटी' नामक एक पुस्तक के रूप में कलकत्ता विश्वविद्यालय ने प्रकाशित किया। यह पुस्तक वास्तव में जर्मन व फ्रेंच में प्रकाशित आइंस्टीन के कार्यों का अंग्रेजी में हुआ प्रथम अनुवाद थी। इस तरह बोस के इन अनुवादी प्रयासों ने अंतरराष्ट्रीय विज्ञान को भारतीय वैज्ञानिकों के लिए बोधगम्य बनाने की दिशा में सार्थक प्रयास प्रारंभ किए।

सत्येंद्रनाथ अपनी मातृभाषा बांग्ला के प्रति बेहद संजीदा थे। वे अपने मित्रों को बांग्ला में पत्र लिखते थे। कक्षाओं में पढ़ाते समय भी वे अपने विद्यार्थियों से बांग्ला में ही बातें करते। उनका मानना था कि विज्ञान का मौलिक चिंतन व वैचारिक स्पष्टता मातृभाषा में ही संभव है। सभी शिशु मातृभाषा को तब से सीखने लगते हैं, जब वे अपनी इंद्रियों द्वारा आस-पास के संसार को जानने और समझने लगते हैं। इसके साथ ही क्रमशः अनुकरण से वे मातृभाषा में शिक्षण प्रारंभ करते हैं तथा निरंतर पठन-पाठन एवं अभ्यास से पुष्ट होते हैं। मातृभाषा का ज्ञान केवल अक्षर ज्ञान पर आधारित नहीं होता, वह तो माँ की लोरियों को सुनते-सुनते बच्चे में आत्मसात होता जाता है। मातृभाषा के प्रति जिस तरह उनकी स्पष्ट सोच थी, उसी तरह वे स्वतंत्रता के बाद भारत के विकास में विज्ञान की आवश्यकता से भी पूरी तरह इत्तेफाक रखते थे। सत्येंद्रनाथ बोस ने ही भारतीय भाषाओं के माध्यम से विज्ञान को लोकप्रिय बनाने के विचार को व्यक्त किया था। उन्होंने जोर देकर कहा था कि जब तक कोई भी आम विद्यार्थी अपनी मातृभाषा में विज्ञान को नहीं पढ़ेगा, तब तक वह न तो उसे समझ पाएगा और न ही उसका जीवन में अनुसरण कर पाएगा।

सत्येंद्रनाथ बोस ने क्वांटम भौतिकी में अपने मौलिक और पथप्रदर्शक योगदान के अलावा विज्ञान, समाज और सरकार के साथ-साथ विज्ञान के बीच एक अंतर्संबंध के रूप में सेवा करने के लिए एक विज्ञान संगठन की आवश्यकता की कल्पना की थी। सत्येंद्रनाथ बोस ने सन् 1916 से लेकर 1921 तक कलकत्ता विश्वविद्यालय में पढ़ाया था, फिर सन् 1921 में वे नवस्थापित ढाका विश्वविद्यालय के भौतिकी विभाग में रीडर के पद पर नियुक्त हुए। वहाँ वे सन् 1945 तक रहे। इसी बीच सन् 1924 से लेकर 1926 तक बोस यूरोप के दौरे पर रहे और अल्बर्ट आइंस्टीन के अलावा विश्व के कई और महान वैज्ञानिकों जैसे पॉल लैंगविन, मॉरिस डी ब्रोग्ली, मैरी क्यूरी, नील बोहर, फ्रिट्ज हैबर, ओटो हैन, लिसे मीटनर, वाल्टर बोथे, हैंस गीगर, पीटर डेबी, वॉन लाउ, वोल्फगैंग पाउली, वर्नर हाइजेनबर्ग आदि से मिले। विश्व के अलग-अलग उत्कृष्ट वैज्ञानिक संस्थानों और विश्वविद्यालयों में बोस ने इस बात को अनुभव किया कि वहाँ सभी अपनी मातृभाषा में ही कार्य करते हैं। भारत वापस आकर बोस ने भी एम.एस-सी. और बी.एस-सी. ऑनर्स की कक्षाओं में बांग्ला में पढ़ाने के हर संभव प्रयास किए। बोस सन् 1945 में ढाका विश्वविद्यालय को छोड़कर वापस अपनी मातृभूमि कलकत्ता आ गए और एक बार फिर विश्वविद्यालय में भौतिकी के प्रोफेसर पद पर नियुक्त किए गए। सन् 1956 में कलकत्ता विश्वविद्यालय से सेवानिवृत्त होने के बाद सत्येंद्रनाथ बोस को शांति निकेतन में विश्व भारती विश्वविद्यालय का कुलपति बनाया गया, जहाँ वे 1958 तक रहे। वर्ष 1958 में ही बोस को रॉयल सोसायटी का फेलो चुना गया और सन् 1959 में उन्हें देश के राष्ट्रीय प्रोफेसर के रूप में नियुक्त किया गया। प्रोफेसर बोस 16 वर्ष तक मृत्युपर्यंत इस पद पर बने रहे।

जीवन के व्यस्ततम कालखंडों में भी विज्ञान के मातृभाषा में प्रसार और शिक्षा के लिए उनके प्रयासों में कभी कमी नहीं आई। सत्येंद्रनाथ बोस ने कलकत्ता वापसी के बाद विज्ञान के ज्ञान को बांग्ला में प्रसारित करने के लिए एक विज्ञान संगठन स्थापित करने का निश्चय किया। 18 अक्तूबर, 1947 को कलकत्ता साइंस कॉलेज के अपने कुछ विज्ञान प्रेमी मित्रों के साथ मिलकर उन्होंने एक विज्ञान संगठन स्थापित करने का निर्णय लिया। उन्होंने बंगाल के सभी प्रख्यात वैज्ञानिकों और शिक्षाविदों के सामूहिक प्रयासों से 25 जनवरी, 1948 को 'बंगिया विज्ञान परिषद' नामक एक विज्ञान संगठन की स्थापना की। उनके इस मिशन में गोपाल चंद्र भट्टाचार्य जैसे कई मित्रों ने उस समय खूब साथ दिया था। इस तरह बोस के अथक प्रयासों से स्थापित बंगिया विज्ञान परिषद एक पंजीकृत संस्था थी, जिसका एकमात्र उद्देश्य बांग्ला भाषा के माध्यम से विज्ञान को बढ़ावा देना और लोकप्रिय बनाना था। सत्येंद्रनाथ बोस 'बंगिया विज्ञान परिषद' के 1948 से 1974 तक अध्यक्ष रहे। 'बंगिया विज्ञान परिषद' का गौरवशाली इतिहास इस बात का साक्षी रहा है कि इसके विचारों और मूल्यों से न केवल बंगाली समाज में एक शक्तिशाली विज्ञान-आंदोलन जागृत हुआ था, वरन् देशभर में उभरे अनेक लोकविज्ञान आंदोलनों को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इससे प्रेरणा मिली। वर्तमान में भी 'बंगिया विज्ञान परिषद' मातृभाषा में विज्ञान के संचार और प्रसार के लिए किए गए बोस के संकल्प को पूर्ण निष्ठा से निभाती आ रही है।

अपनी जीवनशैली में शांत, विनम्र और सहज स्वभाव वाले सत्येंद्रनाथ बोस अकसर कहते थे कि भारत में कुछ विश्वविद्यालय अवश्य खोले जाने चाहिए, जिनमें सामाजिक, वैज्ञानिक और विज्ञान तात्विक सभी विषयों का उच्चतम स्तर पर पठन-पाठन मातृभाषा में ही हो। उन्होंने अपने देश की मौलिक सृजनशील वैज्ञानिक प्रतिभाओं के उदय की संभावना को दृष्टिगत रखते हुए कहा था कि प्रत्येक वस्तु तथा प्रत्येक व्यक्ति अनंत संभावना का भंडार होता है। आवश्यकता उन्हें परखने भर की है। उनका मानना था कि इसके लिए गाँव-गाँव में स्थापित मंदिरों की तरह विज्ञान गृहों की स्थापना करनी पड़ेगी और तभी हमारा दारिद्र, हमारा पिछड़ापन और हमारी दुर्व्यवस्था का अंत होगा। बोस का विश्वास था कि मातृभाषा में विज्ञान के सर्वांगीण विकास से देश का कल्याण सुनिश्चित है।

वीरांगना नीरा आर्या

भारत की आजादी के दीवाने-मतवाले शैदाई सिरफिरे बलिदानी, और न जाने क्या-क्या कहा गया गुलाम भारत के गुलाम सफेद और काले अंग्रेजों के द्वारा हमारे महान स्वतंत्रता सेनानियों को। आज जब देश आजादी के अमृत महोत्सव के लगभग अप्रतिम सोपान पर है, तब अमृत काल में युवाओं का यह देश विकास के लिए समर्पण की राह पर शीघ्र ही अग्रसर होगा।

पीढ़ियाँ लगीं इस देश को आजाद होने में और पीढ़ियाँ गुजर रही हैं इस देश को आजाद रहते देखने में। पर यह आजादी कैसे, कब, कहाँ, क्यों और किन मूल्यों पर और बलिदानों पर मिली, इस बात को बताने के लिए वे वीर सेनानी हमारे बीच नहीं हैं, पर उनके कार्य, उनका बलिदान आज भी अशेष हैं। ऐसे गुमनाम सेनानियों में एक नाम है महान बलिदानी आदरणीया नीरा आर्या का।

सूर्यकांत शर्मा

पिछले 35-36 वर्षों से समसामयिक विषयों और समाज की समस्याओं पर लेखन कार्य में संलग्न हैं।

प्रकाशन : पत्रकारिता लेखन दोनों भाषाओं यथा हिंदी और अंग्रेजी में है। सभी प्रतिष्ठित समाचार पत्रों, पत्रिकाओं में निरंतर लेखन। पीआईबी में भी इनके कई फीचर प्रकाशित हो चुके हैं।

संपर्क : मोबाइल– 7982620596

ईमेल– suryakant_sharma03@yahoo.co.in

भारत के स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास की एक ऐसी वीरांगना जिसने तन-मन-धन सभी कुछ इस देश को आजाद देखने के लिए न्योछावर कर दिया और बदले में कभी कुछ न माँगा, न स्वीकारा और हमारे गणतंत्र के राजनेताओं से न मनुहार की, न अनुनय-विनय की कि माता आपके ऋण से कुछ तो इस देश को उऋण हो लेने दो।

ऐसी वीरांगना का जन्म 05 मार्च, 1902 को खेकड़ा कस्बे में हुआ। वर्तमान में खेकड़ा कस्बा उत्तर प्रदेश के बागपत जिले में है। प्रकृति जब बड़े कार्यों के लिए जन्म देती है तो इसकी नींव पहले ही तैयार कर देती है। नीरा आर्या और भाई बसंत कुमार बहुत ही छोटी उम्र में अनाथ हो गए थे। आगे चलकर यही दोनों बहन-भाई आजाद हिंद फौज में भर्ती होकर देश की स्वतंत्रता और आन-बान-शान के लिए जीवनपर्यंत लड़े। इन दोनों के धर्म पिता सेठ छज्जूमल बड़े ही देशभक्त थे और उनका व्यापार देश के काफी बड़े हिस्से में और कलकत्ता तक फैला था। उन्होंने ही नीरा आर्या और उनके भाई बसंत कुमार को पाला-पोसा। पैसे, शोहरत और रसूख की कोई कमी न थी। कोलकाता उस समय सांस्कृतिक रूप से बेहद धनाढ्य शहर था, इसलिए नीरा आर्या की शिक्षा-दीक्षा भी इसी संस्कृति में हुई। यूँ भी अगर बंगाल की बात करें और वह भी उस वक्त की तो यह शहर अपने आप में एक संपूर्ण, जीता-जागता सांस्कृतिक केंद्र था।

बंगाल के बारे में एक और खास बात है कि यहाँ के सेनानियों ने अंग्रेजों को बुद्धि और कूटनीतिक बल से अनेक बार धूल

चटाकर एहसास दिलाया था कि धोखेबाजी और वीरता में दिन-रात जैसा अंतर होता है। अंग्रेज अपने आपको बहुत ही बुद्धिमान कौम मानते थे, पर उनका यह भ्रम हमारे स्वतंत्रता सेनानियों, वैज्ञानिकों, समाजी विज्ञानियों और आमजन ने समय-समय पर दर्शनीय अंदाज में तोड़ा। बस कमी रही तो आपसी समन्वय की। खैर, बात है नीरा आर्या की। इनकी प्रारंभिक शिक्षा कलकत्ता के पास के ग्राम भगवानपुर में हुई। इनके प्रारंभिक शिक्षक का नाम श्री बनी घोष था, जिन्होंने उन्हें संस्कृत भाषा का ज्ञान दिया। बाद की शिक्षा कोलकाता में हुई। वे कई भाषाओं यथा हिंदी, अंग्रेजी और बांग्ला भाषा के अतिरिक्त भी अन्य भाषाओं में प्रवीण थीं। बंग भूमि की गोद में पली-बढ़ी यह हमारी वीरांगना देशप्रेम में पग चुकी थीं और संपन्न माता-पिता ने उस समय के अनुसार उनका विवाह ब्रतानिया पुलिस के अधिकारी श्रीकांत जयरंजन दास से कर दिया और इधर हमारी स्वातंत्र्य नेत्री वीर सुभाष की मीरा बन चुकी थीं।

वह अंग्रेजों को शस्त्र क्रांति यानी मिलिट्री ताकत से निकाल बाहर करना चाहती थीं, इसीलिए आई.एन.ए. की रानी झाँसी रेजिमेंट में शामिल हो गईं।

नीरा आर्या के पति, जो कि ब्रिटिश पुलिस में इंस्पेक्टर और अंग्रेजों के अंधभक्त थे, की अंधभक्ति और चापलूसी के चलते उन्हें अंग्रेज सरकार ने वीर सुभाष चंद्र बोस की जासूसी करने और हत्या करने के कुत्सित और घृणित कार्य में लगा दिया था।

यह देशद्रोही ब्रिटिश पुलिस का इंस्पेक्टर रात-दिन वीरशिरोमणि सुभाष बाबू की जासूसी में जुनून की हद तक चौबीसों घंटे लगा रहता था और हमारी वीरांगना भारत माता की बेड़ियों को काटने को हर समय, हर क्षण सद्य रहती थीं। उस देशद्रोही श्रीकांत जयरंजन दास को जब यह पता लगा कि उसकी पत्नी यानी नीरा आर्या नेताजी सुभाष चंद्र बोस के करीबियों में से एक हैं तो उस शैतान ने इन पर अपने पति होने का हक और अंग्रेजों के घृणित कुकृत्य को पूरा करने हेतु दबाव बनाना शुरू कर दिया। इससे नीरा अब जासूसी अवतार में आ गईं और अपने पति की हर हरकत पर नजर रखने लगीं और वह भी इस शाइस्तगी से कि एक हाथ से दूसरे हाथ को भी पता न चले कि क्या, कब, कैसे जासूसी हो रही है। नीरा आर्या को हम संभवतः स्वतंत्रता संग्राम की प्रथम महिला जासूस के गौरवपूर्ण स्थान पर देख सकते हैं।

सुभाष चंद्र बोस, जिन्हें उनके सहयोगी बड़े प्रेम और आदर से 'सुभाष बाबू' कहते थे, उनकी चौकन्नी और चपल गतिविधियों से अंग्रेज सरकार बहुत परेशान थी और उन्हें कैसे भी अपने रास्ते से हटाना चाहती थी और श्रीकांत जयरंजन दास भी नेताजी के पीछे लगा था। इसकी जानकारी नीरा को भी निरंतर थी।

जब एक बार नेताजी सुभाष चंद्र बोस अपने शिविर में थे, उनका ड्राइवर उनके साथ ही था और इस अंग्रेज भक्त इंस्पेक्टर को पता लग चुका था कि नेताजी पास ही में हैं। मौका पाते ही उसने अपनी सर्विस रिवॉल्वर से इन पर गोली दाग दी। वह गोली नेताजी के ड्राइवर को लगी और उधर साथ-ही-साथ उस शैतान इंस्पेक्टर का भी अंत एक दर्दनाक चीख के साथ उसी वक्त हो गया! कैसे?

यूँ भी सर्विस रिवॉल्वर में एक से ज्यादा गोलियाँ होती हैं, पर ऐसा संभव ही नहीं हो पाया नीरा आर्या के कारण। नीरा ने तुरंत बंदूक की संगीन अपने पति के पेट में घोंपकर उसे यमलोक भेज दिया। बहुत कठिन होता है ऐसा निर्णय लेना और वह भी उस देश-काल की मनःस्थिति में कि कोई पत्नी अपने हाथ से पति को मौत के घाट उतारे और अपने सुहाग के सिंदूर को स्वयं ही माँ काली की तरह पोंछ डाले। यह भी हमारी भारतीय संस्कृति में पली-बढ़ी ललनाओं का गुण है। सुभाष बाबू मौत की इस दावत से बेदाग निकल गए। कहते हैं कि नेताजी ने इन्हें 'नागिनी नीरा' भी कहा, तब से इन्हें 'नागिनी नीरा' के नाम से भी जाना जाता है।

कहा जाता है आज़ाद हिंद फौज के सेनानियों पर लाल किले में मुकदमा चला और बचे हुए सभी लोगों को छोड़ दिया गया, सिवाय नीरा आर्या के। अंग्रेजों को यह पक्का विश्वास था कि वे वीर सुभाष चंद्र बोस के ठिकाने का पता जानती हैं। इसके अलावा अंग्रेज सरकार को यह भी घटिया संदेश देना था कि सरकारी अधिकारी का कत्ल करने वाले का क्या हश्र होता है। उन्हें काले पानी यानी अंडमान की सेलुलर जेल में डाल दिया गया। अपने आप को संसार की सबसे बुद्धिमान, न्यायप्रिय और सुसंस्कृत कौम बताने वाली अंग्रेज कौम का तब शुरू हुआ अमानवीय कुकृत्यों का अंतहीन सिलसिला! जिसे सुनकर ही कठोर-से-कठोर हृदय द्रवित होकर रो उठे।

अंग्रेजों को नेताजी सुभाष चंद्र बोस की विमान दुर्घटना में मृत्यु पर कतई विश्वास नहीं था, वरन पूरा शक था कि नीरा आर्या उनकी निकट सहयोगी रही हैं। वे उनके बारे में जानती हैं। अतः उस विकृत मानसिकता वाले जेलर ने जल्लाद को उनकी कसी हुई बेड़ियों को कटवाने हेतु बुलवाया और प्रलोभन दिया कि अगर वह जिंदा रहना चाहती हैं तो वे नेताजी का पता बता दें। इस पर उस महान बलिदानी ने कहा कि हाँ, जानती हूँ कि हमारे नेताजी सुभाषचंद्र बोस कहाँ रहते हैं, पर नहीं बताऊँगी। उस अंग्रेज जेलर के इशारे पर जल्लाद ने बेड़ियाँ काटने के बहाने उनके हाथ और पैरों की खाल उधेड़ दी। तब इस अविचल सेनानी ने कहा कि नेताजी यहाँ मेरे दिल में रहते हैं तब उस शैतान जेलर ने हैवानियत की सारी हदें पार करते हुए ब्रेस्ट रिपर से उनके मातृत्व और नारीत्व को अमृत प्रदान करने वाले अंगों को काट डालने का प्रयास किया। इस पर भी यह वीरता की प्रतिमूर्ति नहीं झुकी।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात आदरणीया नीरा आर्या ने बड़ी ही खुद्दारी का कठोर जीवन जिया और घोर गरीबी में फूल बेचकर अपना जीवनयापन किया। वे हैदराबाद में रहती थीं। वहाँ के स्थानीय निवासी उन्हें 'पेदम्मा' कहा करते थे। कहा जाता है कि उन्होंने अपनी आत्मकथा भी लिखी थी। जीवनभर उन्होंने कोई सरकारी सहायता नहीं स्वीकार की। 26 जुलाई, 1998 को उनकी मृत्यु हैदराबाद के उस्मानिया अस्पताल में बेसहारा महिला के रूप में हुई।

कौन जानता था कि भारत का लोकतंत्र परिपक्वता को प्राप्त कर तुष्टिकरण की कायरतापूर्ण नीति को छोड़कर आज़ादी के अमृत महोत्सव की नई कहानी लिखने को सद्य होगा, जिसमें अपनी पिछली और युवा पीढ़ी के साथ-साथ आने वाली पीढ़ी को भी शिक्षित करने की कवायद बेहद संवेदनशीलता और अनुशासन से प्रारंभ होगी। वह शुरुआत हो चुकी है, जिसमें भूले-बिसरे स्वतंत्रता संग्राम के नायक और नायिकाओं के संघर्षपूर्ण और स्वर्णिम योगदान को उकेरा और जन-जन तक पहुँचाने का बीड़ा उठाया जाएगा। वह समय आ गया है।

बंगाल के बाउल

बंगाल में एक समुदाय विशेष के लोग रहते हैं। इस समुदाय के लोगों को 'बाउल' से संबोधित किया जाता है। इस समुदाय के लोग पीले रंग के लंबे अलखल्ला वस्त्र धारण करते हैं। कंधे पर एक तारा, दो तारा, गुबगुबी, जिसे 'आनंद लहरी' भी कहते हैं। लोग खोल आदि वाद्ययंत्रों के साथ गाँवों, नगरों, रेलवे स्टेशनों, बस स्टैंडों आदि स्थान पर गीत गाकर अन्न-पैसे संग्रह करते हैं। इस कर्म को उनकी भाषा में 'माधुकरी कर्म' कहा जाता है। 'माधुकरी' का अर्थ हाथ से 'मधु' अथवा 'अमृत संग्रह' करना है। उनकी रचनाएँ गेयात्मक होने के कारण बंगाल के अत्यंत ही लोकप्रिय गीतों में से एक है। कवींद्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर इनकी विचारधाराओं एवं गीतों से इतने प्रभावित हुए थे कि इनकी विचारधाराओं को समझाने के लिए उन्होंने

डॉ. रामचंद्र राय

जन्म : 02 अगस्त, 1949

शिक्षा : पी-एच.डी.।

संप्रति : विश्वभारती, शांतिनिकेतन में राजभाषा हिंदी के प्रथम प्रभारी व शांतिनिकेतन हिंदी प्रचार सभा के संस्थापक सचिव के रूप में कार्यरत।

लेखन : बांग्ला एवं हिंदी के आधुनिक गद्य के निर्माता ईश्वरचंद्र गुप्त तथा भारतेंदु हरिश्चंद्र पर तुलनात्मक शोध कार्य। बांग्ला से हिंदी में अनुवाद कार्य व तुलनात्मक विषयों पर लेखन कार्य एवं पुस्तकों का प्रकाशन। मधुबनी की लोककला पर अन्वेषण-विश्लेषण सर्वेक्षण एवं लेखन कार्य।

संपर्क : मोबाइल– 9932825660

ईमेल– drrcroy@gmail.com

अंग्रेजी में 'द रिलीजन ऑफ मैन' अर्थात 'मानव धर्म' नाम से निबंध पुस्तक एवं इनकी गेयात्मक रचनाओं के अनुकरण पर कई गीतों की रचनाएँ भी कीं, जो 'बाउल' शीर्षक पुस्तक के रूप में प्रकाशित हैं। बाउलगण रवीन्द्रनाथ को 'रवि बाउल' से ही संबोधित करते हैं एवं इन्हें 'महागुरु' भी मानते हैं।

संस्कृत में एक शब्द 'बातुल' है। 'बातुल' शब्द से 'बाउल' शब्द की उत्पत्ति मानी जाती है। बातुल का अर्थ बाउर, बौरा, वायु आदि दिया गया है, जिसका सामान्य अर्थ पागल, बंधनहीन, मुक्त आदि होता है। इन सब कारणों से बाउल समुदाय के लोग अपने को पागल भी कहते हैं। पुरुष बाउल के लिए 'खेपा' (पागल) एवं महिला बाउल के लिए 'खेपी' (पगली) शब्द भी प्रचलित है। इस प्रकार संस्कृत के 'बातुर' शब्द से ही 'बाउल' शब्द की उत्पत्ति मानी जाती है, किंतु 'बाउल' शब्द 'पागल' अर्थ का द्योतक नहीं है। बाउल से यह अभिप्राय समझा जाता है कि इस समुदाय के लोग जाति-पाँति, धर्म-कर्म, शास्त्र-पुराण, लोकाचार आदि का अनुसरण न करके मुक्त कंठ से मानव की पूजा करते हैं। इन लोगों की दृष्टि में मानव ही ईश्वर है। इस मानव को शरीर के अंदर ही ईश्वर को ढूँढ़ने का प्रयास करते हैं। बाउलों के इन पदों के माध्यम से उनकी विचारधारा, जाति-पाँति, वेशभूषा, रहन-सहन, खान-पान आदि का परिचय मिलता है–

वेद छाड़ा फकिरेर एइ धारा।
माने ना केताब कोरान, नबीर, तरीक छाड़ा।
मसरेक तरीक करे, चंद्र-सूर्य पूजा करे,
पंचरस साधन करे, चंद्र भेदी यारा॥
सरल चंद्र, गरल चंद्र, रोहिणी चंद्र धारा

रस बीज मिल करे पान करछे तारा॥
सब चूल माथाय जटा, खाय सिद्धि, भाँग घाँटा,
कथा कय एलो मेलो, बुझा याय ना सेटा॥
तादेर भंगी देखे लोक भुले याय गानेर बड़ घटा।
ए दीन रसिक बले बेतरीक से
आउल-बाउल-नेड़ा।

बंगाल के बाउल की भाँति ही मध्यकालीन संत कवि कबीर, दादू, रविदास, रज्जब, मलूक, नानक आदि ने भी जाति-पाँति, धर्म-कर्म, शास्त्र-पुराण, लोकाचार आदि को नहीं स्वीकारा है। तदुपरांत, बंगाल के बाउल एवं मध्यकालीन संत कवियों के साहित्य में क्या अंतर है? असल में मध्यकालीन संत कवियों ने भक्ति के लिए केवल ज्ञान पक्ष को ही लिया है, जहाँ साधन संगिनी प्रकृति नारी का संग वर्जित है। किंतु बाउल ने प्रकृति नारी को अपनी साधना के पथ का आवश्यक पथिक माना है। बाउलों की मान्यता है कि पुरुष-प्रकृति नारी-पुरुष के मिलन के बिना साधनापूर्ण नहीं हो सकती है, इसलिए मध्यकालीन संत कवियों की साधना एवं बाउल की साधना में अंतर है।

बंगाल के सहजिया वैष्णव मतावलंबियों की साधना-पद्धति में साधन-संगिनी की प्रधानता है। बाउल की साधना में साधन-संगिनी का स्थान है, किंतु यह साधन-संगिनी गृही की भाँति यौनाचार के लिए नहीं होती है, बल्कि मिथुनात्मक योग साधना के अंग के रूप में पुरुष-प्रकृति (नारी-पुरुष) के संगम से साधना के लिए होती है। बंगाल के सहजिया वैष्णव मतावलंबियों के लिए पुरुष-नारी का यौन मिलन धार्मिक रूप से वैध है। सहजिया वैष्णव एवं एक श्रेणी के मुसलमान फकीर के साथ मेल-मिलाप से बाउल समुदाय का उद्‌भव हुआ है, जो वेद-कुरान, मंदिर-मस्जिद, साधन-भजन, व्रत-नमाज, पूजा-अर्चना आदि शास्त्रीय धार्मिक आचार-विचार, रीति-रिवाजों का विरोध करते हुए अपने इष्टदेव की प्राप्ति के लिए साधना करते हैं। इन लोगों का कोई लिखित शास्त्र नहीं है। इनका साहित्य मुख्यतः वाक् साहित्य ही रहा है। यह एक निरक्षर समुदाय की सृष्टि है। यह संपूर्णरूपेण लौकिक धर्म-मत है, परंतु बाउल सामाजिक आचार-विचार, वेद-कुरान आदि के विरोधी होते हुए भी नास्तिक की भाँति आचरण नहीं करते हैं। ये लोग गुरुवाद, देहिक एवं अध्यात्मवादी धर्म-साधना के साथ-साथ लौकिक धर्म का भी पालन करते हैं। बाउलों ने वेद-कुरान आदि को अस्वीकार करते हुए हिंदू एवं मुसलमान को एक मंच पर लाने का प्रयास किया है। फलस्वरूप, बंगाल में हिंदू-मुसलमानों के मिलन से ही बाउल समुदाय का आत्मप्रकाश हुआ है, किंतु ये कार्य एक दिन में संभव नहीं हुआ है। बल्कि सहजिया वैष्णव-वैरागी तथा सूफी मुसलमान फकीरों के ऊपर समाज के उच्च श्रेणी के लोगों की उदासीनता, अवहेलना, तिरस्कार-फटकार आदि से एकसूत्र में बँधने के लिए बाउल समुदाय का उद्‌भव हुआ है। इसका परिचय इन पदों से मिलता है—

वेदे कि तार मर्म जाने
ये रुप सॉइर लाल-खेला
आछे एइ भुबने॥
पंचतत्व वेदेर विचार
पंडितेरा करेन प्रचार,
मानुष तत्त्व भजनेर सार
वेद छाड़ा वैरागेर माने॥
गोले हरि बलले कि हयत्र
निगूढ़ तत्व निराला पाय,
नीरे क्षीरे युगल हय
सॉइर बारमखाना सेइखाने॥
पड़ले कि पाय पदार्थ
आत्म तत्त्वे यारा भ्रान्त
लालन बले साधु मोहान्त सि़द्ध हय आपनार चिने।

बाउल समुदाय का आविर्भाव 18वीं शती का मध्य माना जाता है। इस धारा के प्रवर्तकों में बाउल फकीर लालन शाह (सन् 1774-1890 ई.) का नाम सर्वप्रथम आता है। इनके पूर्व बाउल साहित्य की रचना हुई है, ऐसा उल्लेख नहीं मिलता है। संत कबीर की भाँति लालन शाह हिंदू थे या मुसलमान इसमें मतभेद है। इसका परिचय लालन शाह के इन पदों के माध्यम से मिलता है—

सब लोके कय लालन कि जात संसारे
लालन कय, जेतेर कि रूप, देखलाम ना ए नजरे॥
छुन्नत दिले हये मुसलमान,
नारी लोकेर कि हय विधान?
बामन चिनि पैतार प्रमाण
बामनी चिनि कि धरे॥
केओ माला, केओ तसबि गलाय,
जाइते कि जाति भिन्न बलाय
जेतेर चिह्न रय कार रे॥
गर्ते गेले कूप जल कय
गंगाय गेले गंगाजल हय,
मूल एक जल से, ये भिन्न नय
भिन्न जानाय पात्र-अनुसारे।
जगत बेड़े जेतेर कथा
लोके गौरब करे यथा तथा,
लालन से जेतेर फीता
बिकियेछे सात बाजारे॥

बाउल भाव का पोषण बंगाल के अत्यंत ही सामान्य जन के ह्रदय में हुआ है। बाउल लोगों के दिल को जीने की कला भी जानता है। ये लोग मानवीय आचार-विचार पर ही अधिक बल देते हैं। ये लोग काया-देह की आध्यात्मिक साधना करते हैं। इसलिए मानव देह, मानव जीवन, मानव गुरु, मानव आत्मा, मानव धर्म, मानव बोध आदि के संबंध में कौतूहल उत्पन्न करते हैं एवं इन्हें सम्मान भी देते हैं। इन लोगों की मान्यता है कि धर्मशास्त्र के कारण ही जाति-पाँति, वर्ग-वर्ण आदि में भेदभाव है। इसलिए जाति, धर्म, वर्ण आदि भेदमुक्त मानव जीवन एवं मानव समाज की स्थापना ही बाउलों का ध्येय है।

इन लोगों की साधना का मुख्य ध्येय नफस अथवा अहं को विनिष्ट करना है। आप्तनाश नहीं होने पर अटल अथवा ईश्वर की

प्राप्ति नहीं होती है। इस अटल अथवा ईश्वर के संबंध में इनकी अपनी मान्यताएँ हैं। बाउलों का ईश्वर मनेर मानुष, सोनार मानुष अथवा अचिन पाखि है। वे काल्पनिक स्वर्गलोक में निवास न करके मानव के अंतःलोक में निवास करते हैं। उन्हें प्रेम-भक्ति के पथ पर काया साधना (दैहिक साधना) से ही पाया जा सकता है। इन लोगों की मान्यता है कि जो शरीर में है, वही ब्रह्मांड में है। इसी धर्म-दर्शन को सामने रखकर दैहिक साधना करते हैं। यही कारण है कि इस

“ प्रत्येक बाउल की रचनाओं में एक ही तत्व-कथा, साधना-पद्धति, गुरुवाद, काया तत्व आदि का वर्णन मिलता है। इसलिए एक ही रचना के साथ दूसरे की रचनाओं में कोई विशेष अंतर नहीं दिखाई देता है। ”

संप्रदाय के लोग वेद-कुरान, रीति-रिवाज, आचार-विचार का विरोध करते हैं। इस संप्रदाय के लोग वेद-कुरान, मंदिर-मस्जिद, धर्म-प्रतिष्ठान, पुरी-मक्का, तीर्थ स्थान, रोजा-नमाज, जप-तप, धर्म-कर्म आदि की अवहेलना करते हैं।

बाउलों की मान्यता है कि मानव-प्रेम से ही ईश्वर की प्राप्ति में किसी प्रकार की बाधा नहीं आती है। मानव के मध्य ही मानुष रतन मानव रत्न है। इसलिए मानव के मध्य ही उन्हें ढूँढ़ते हैं। लालन शाह के इन पदों में मानव जीवन के महत्व को दिखाया गया है—

एमन मानव-जनम आदि कि हबे?
मन या कर, त्वराय कर उइ भवे।
अंतर रूप सृष्टि करलेन साँइ
शुनि मानवेर तुलना किछु नाइ
देव मानवगण करे आराधन जन्म निते मानवे
कत भाग्येर फल ना जानि,
मनेर पेयेछ एइ मानव तरणी,
येन मरा ना डोबे॥

बाउलों की रचनाएँ मुख्यतः गेयात्मक होती हैं, जो मुख्यतः 1. गुरु-भक्ति, 2. शास्त्र विरोधी एवं 3. काया-देह संबंधी, तीन प्रकार की होती हैं। काया संबंधी गेयात्मक रचनाएँ ही बाउल समुदाय की प्राण हैं, क्योंकि इन लोगों की साधना मुख्यतः मानव काया केंद्रित साधना है। इसलिए मानव शरीर से संबंधित प्रेम साधना, मिथुन साधना ही बाउलों की सृष्टि है। ‘बाउल’ काया में ही आत्मा, हृदय, चेतना, अनुभूति, इंद्रिय ज्ञान आदि का अनुभव करते हैं। साधना की दो धाराएँ—ज्ञानमार्गी योग साधना तथा मिथुनात्मक योग साधना होती है। प्रेम एवं भक्ति के बिना साधना नहीं होती है। भक्तों के लिए ईश्वर रूपी गुरु ही ईश्वर के बीच प्रेम एवं भक्ति के संपर्क सूत्र होते हैं। बाउल साधना में मिथुन तत्व की प्रधानता होती है।

इस प्रकार बाउल साधना के मुख्य उपादान मानव हैं। इनके मतानुसार मानव के सिवा इस माया रूपी संसार में दूसरा कुछ नहीं है। इसलिए इन लोगों के धर्म की स्थापना ही सहज-सरल मानव सत्य के ऊपर हुई है। महाकवि चंडीदास की निम्न पंक्ति बाउल-विचारधारा की पुष्टि करती है—

कहे चंडीदास सुनो है मानुष भाइ।
सबारि उपर मानुष सत्य आर किछु नाइ॥

बाउलों की मान्यता है कि मानव-जन्म के साथ-साथ ही बाउल मत का प्रादुर्भाव हुआ है। बाउलों के अनुसार, वेद की रचना तो बाद में ऋषियों के द्वारा हुई है, इसलिए वेद कृत्रिम हैं। वेद का आरंभ है, किंतु बाउल सहजमत का आरंभ सृष्टि के आरंभ से ही हुआ है। बाउल मानव को छोड़ और किसी को नहीं स्वीकार करता है। बाउलों का साहित्य मानव केंद्रित साहित्य है, जो अपनी गेयता के कारण अत्यंत ही लोकप्रिय है। मानव में ही इनकी साधना का गूढ़ रहस्य छिपा हुआ है। अपनी साधना के गूढ़ रहस्य का उद्‌भावन बाउल गीतों के माध्यम से ही व्यक्त करते हैं। बाउल साहित्य बांग्ला साहित्य की अमूल्य निधि है। इनकी रचनाएँ गेयात्मक होने के कारण इनमें सुरों के साथ छंदों का अद्‌भुत सम्मिश्रण रहता है। इनकी गेयात्मक रचनाओं के छोटे-छोटे अंश होने पर भी ये गायन करने पर पुष्पों की भाँति खिल उठते हैं। अद्‌भुत वाक्‌चातुर्य एवं गेय शैली होने के कारण पूरे बंगाल में बाउल फकीर लालन शाह को सिद्ध पुरुष के रूप में संबोधित किया जाता है। बाउल फकीर लालन शाह के अतिरिक्त भी कई बाउल साधक हुए हैं। प्रत्येक बाउल की रचनाओं में एक ही तत्व-कथा, साधना-पद्धति, गुरुवाद, काया तत्व आदि का वर्णन मिलता है। इसलिए एक ही रचना के साथ दूसरे की रचनाओं में कोई विशेष अंतर नहीं दिखाई देता है। अधिकांश बाउल अनपढ़, अल्पशिक्षित होने के कारण इनके गीत इनके वाक् में ही रहता है। यही नहीं कभी-कभी वे मौखिक ही गीतों की रचना कर डालते हैं। बाउलों की रचनाओं की मूल विषयवस्तु एक धर्म-तत्व का क्रियाकलाप है। इसकी प्राप्ति के लिए पुरुष-प्रकृति नारी पुरुष का संगम आवश्यक है, क्योंकि प्रेम के माध्यम से ही मानव रूपी अचिन पाखि, अधर मानुष, मनेर मानुष आदि को पाया जा सकता है। इसके लिए दैहिक साधना की ही आवश्यकता है। यह दैहिक साधना प्रकृति-पुरुष (नारी-पुरुष) के क्रियाकलापों से ही संभव है। यही बंगाल के बाउल की विशेषता है।

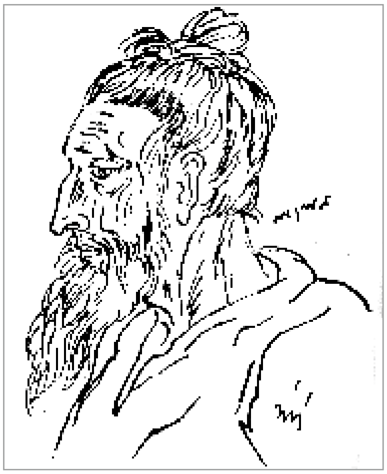

आओ भारतीय भाषाएँ सीखें

हिंदी	संस्कृत	पंजाबी	उर्दू	कश्मीरी	सिंधी	मराठी	कोंकणी	गुजराती	नेपाली	बांग्ला
व्यवसाय	**वृत्तयः**	**विवसाय**	**पेशा**	**कॉम-कार, पेशि**	**पेशो, धंधो, रोज़गार**	**व्यवसाय**	**व्यवसाय, धंदो**	**व्यवसाय, धंधो**	**व्यवसाय**	**व्यवसाय**
अध्यापक	अध्यापकः	अधिआपक	मुदर्रिस, उसताद	व्यसताद, ओखुन	मास्तरु	अध्यापक	अध्यापक	अध्यापक (शिक्षक)	अध्यापक	अध्धापक (द्धा)
कलाकार	कलाकारः	कलाकार	फ़नकार	फनकार, कॉसिब	कलाकारु	कलाकार	कलाकार	कलाकार	कलाकार	शिल्पी, कलाकार
कवयित्री	कवयित्री	कवित्री, कवितरी	शाइरा	शॉयिरा	कवयित्री, शाइरा	कवयित्री	कवयित्री	कवयित्री	कवयित्री	महिला कबि
कवि	कविः	कवी	शाइर	शॉयिर, गोनमाथ	कवी, शाइरु	कवी	कवी	कवि	कवि	कबि
कुम्हार	कुम्भकारः	कुमिआर	कुम्हार	क्राल	कुंभरु, कुंभारू	कुंभार	कुंभार	कुंभार	कुमाले, कुम्हाल	कुमोर, कुमार
गायक	गायकः	गवईया	गुलूकार	ग्यवनवोल	गाईदड़, गवैयो	गवई	गायक	गायक, गवैयो	गायक	गायक
चालक	चालकः	ड्राइवर, चालक	ड्राइवर	ड्रयवर	हलाइंर्दड़ु, चालकु	ड्राइवर, चालक	ड्राईवर	ड्राईवर	चालक, ड्राइभर	चालक, ड्राइभर
चौकीदार	द्वारपालः	चौकीदार	चौकीदार	चूक्यदर	चौकीदारु	पहारेकारी, चौकीदार	वॉचमन	चोकीदार, रखेवाळ	चौकीदार, पाले	चौकिदार
जादूगर	यातुकारः ऐन्द्रजालिकः	जादूगर	जादूगर	जोदूगर	जादूगरु	जादूगार	जादुगर	जादुगर (जादूगर)	जादुगर	जादुकर, बाजिकर
जुलाहा (बुनकर)	तन्तुवायः	जुलाहा	बुनकर, जुलाहा	वोवुर	कोरी, जुलाहो	विणकर, कोष्टी	विणकर	वणकर	जुलाहा, बुनकर	ताँती, तंतुबाय
पत्रकार	पत्रकारः	पत्तरकार	सहाफ़ी	अखबार-नॅवीस	अख़बारनवीसु, पत्रकारु	पत्रकार	पत्रकार	पत्रकार	पत्रकार	सांबादिक
प्रकाशक	प्रकाशकः	प्रकाशक, पबलिशर	नाशिर	पबलिशर, छापनवोल	प्रकाशकु	प्रकाशक	प्रकाशक उजवाडपी	प्रकाशक,	प्रकाशक	प्रकाशक

असमिया	मणिपुरी	ओड़िआ	तेलुगू	तमिल	मलयालम	कन्नड़	डोगरी	संताली	मैथिली	बोड़ो
ब्यसाय, वृत्ति, जीविका	**शिन्फम**	**ब्यबसाय**	**वृत्तुलु**	**तोळिज्गळ्**	**तोळिलुकळ्**	**वृत्ति, धंधे**	**कम्म-धंधा**	**ब्यबसा**	**व्यवसाय**	**फालांगि, बादिंगा**
अध्यापक, शिक्षक	ओजा	अध्यापक	उपाध्यायुडु	आसिरियर्	अध्यापकन्	उपाध्याय, अध्यापक	अध्यापक, माशटर	माचेद्	अध्यापक, पढ़ओनिहार	बिबुंगोरा, फोरोंगिरि
कलाकार	कलाकार	कलाकार	कलाकारुडु	कलैञर्	कलाकारन्	कलाकार कळाविद	कलाकार	कालाकार	कलाकार	आरिमुगिरि
महिला कवि	शैरेङ् इबी नुपी	कबि, नारीकबि	कवयित्रि	पेण कविञर्	कवयित्रि	कवयित्रि	कवित्तरी	अनड़हिया (तिरला)	कवयित्री	खन्थाइगिरिजो
कवि	अशैबा, शैरेङ् इबा नुपा, कबि	कबि	कवि	कविञर्	कवि	कवि	कवि	अनड़हिया	कवि	खन्थाइगिरि
कुमार कुंभकार	चफू शाबा	कुम्हार, कुंभार	कुम्मरि	कुयवन्	कुशवन्	कुंबार	कम्हैर	कुङकाल	कुम्हार	हानि दो दाग्रा, खुमार
गायक	ईशैशक्पा	गायक	गायकुडु	पाडगर्	पाट्टुकारन्, गायकन्	संगीतज्ञ, गायक	गवेइया	सेरेत्र रुसिका	गायक	रोजाबगिरि, खनगिरि
चालक, ड्राइभार	ड्राइवर गारी थौबा मी	चालक	ड्रइवरु	ओट्टुनर	ड्रैवर्	चालक	डरैवर	गाड़ोवान, डाइभर	चालक	सालायग्रा, ड्राइबार
चौकीदार चकीदार	चौकिदार	चौकीदार	कावलिवाडु	कावल्कारन, कावलाळि	कावल्क्कारन्	चौकीदार, कावलुगार	चौकीदार	चौकिदार	चौकीदार	सुखिदार, नेग्रा
यादुगर, पादुकर, बाजिकर	जादु तौबा, मित्रङ हैबा मी	जादुकर (ऐंद्रजालिक)	इंद्रजालिकुडु	जाल विद्दैक्कारन्	जालविद्य-क्कारन्	जादुगार, गारुडिग	जादूगर	जादुगर	जादूगर	जादुखर, जादु दिन्थिग्रा
ताँती, बोवनी	फी शाबा	तंती, बुणाकार	सालेवाडु	नेसवाळि	नेय्त्तुकारन्	नेकार	जुलाह्	जलहा, तान्ति	जोलहा	सि दाग्रा
सांबादिक बातरि दिओता	पाओमी, खबरगी मी	पत्रकार, सांबादिक	पात्रिकेयुडु	पत्तिरिकैयाळर्, इदळाळर्	पत्र-प्रवर्तकन्	पत्रकर्त, पत्रकार	पत्तरकार	पत्रकार, खबरिया	पत्रकार	खौरांगिरि, रादाब बुथुमग्रा
प्रकाशक	अफोङ्बामी, लाइरिक फोडबामी	प्रकाशक	प्रचुरकर्ते	प्रचुरकर्ता, नूल् वेळियिडुपवर्	प्रसाधकन्	प्रकाशक	प्रकाशक	पारसालिज्	प्रकाशक	फोसावगिरि, सेबखांगिरि

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा प्रकाशित भारतीय भाषा कोश से साभार)

वजीर अली का क्रांति-संघर्ष

सामान्यतः इतिहासकार भारतीय स्वतंत्रता का प्रथम संघर्ष '1857 की क्रांति' को स्वीकार करते हैं। 'वृहद् प्रभावान्विति' को लक्षित करते हुए 1857 ई. को स्वतंत्रता का प्रथम संग्राम निश्चित करना भी गलत नहीं, लेकिन इसी क्रांति से स्वतंत्रता संघर्ष का आरंभ मानना विस्मय में डालता है। दरअसल, सन् 1857 से पूर्व ब्रिटिश शोषणकारी व्यवस्था के विरुद्ध कई संघर्ष अस्तित्व में रहे, जिन्हें इतिहास में केवल कुछ पंक्तियों का स्थान प्राप्त हुआ। इन्हीं संघर्षों में 'वजीर अली की क्रांति' भी है। वजीर अली का समय 1780 ई. से 1817 ई. निश्चित होता है। इस दौरान अंग्रेजों की स्थिति कोलकाता एवं बंगाल में सुदृढ़ हो गई थी। अतः अंग्रेजों का लक्ष्य संपूर्ण उत्तर भारत पर अधिकार करना था। पश्चिम दिशा में बढ़ने के क्रम में उनके समक्ष सबसे बड़ा संकट अवध का शासन था। तत्कालीन समय में अवध का शासन आर्थिक, सामरिक, राजनीतिक दृष्टि से काफी महत्व का था। प्राकृतिक अनुकूलता तथा राजनीतिक विस्तार की दृष्टि से यह क्षेत्र अंग्रेजों को आकर्षित करता रहा था। वह प्रत्यक्ष तौर पर अवध शासन हस्तगत नहीं कर सकते थे। इसीलिए अंग्रेजों ने अपनी विस्तार नीति के अनुरूप अवध के नवाब को नियंत्रण में लेने की योजना बनाई।

बंगाल में अंग्रेजों के सुदृढ़ीकरण के समय आसफुद्दौला अवध के नवाब थे। उन्होंने कभी-भी अंग्रेजों को अवध में प्रवेश नहीं करने दिया, परंतु उनकी मृत्यु के बाद अंग्रेजों को अवध में प्रवेश करने का एक अवसर प्राप्त हुआ। 1797 ई. में आसफुद्दौला की मृत्यु के बाद वजीर अली उनके वैधानिक उत्तराधिकारी घोषित हुए। आसफुद्दौला की इच्छा अनुसार 21 सितंबर, 1797 को वजीर अली अवध के चौथे नवाब बने। वजीर अली के नवाब बनने से पूर्व ही अंग्रेज उनके स्वतंत्र विचारों से परिचित हो चुके थे। नवाब बनने के उपरांत वजीर अली ने अंग्रेजों को अवध से मिलने वाली रकम को बढ़ाने से भी मना कर दिया था। इसीलिए अंग्रेज जानते थे कि यदि उन्हें अवध पर नियंत्रण करना है तो वजीर अली को मसनद से हटाना होगा। वजीर अली के मसनद पर आने के उपरांत राजनीतिक दाँवपेचों का सिलसिला आरंभ हुआ। अंग्रेज इस ताक में थे कि कोई राजशाही व्यक्ति मसनद पर अपना अधिकार घोषित करे, ताकि इस आधार पर वजीर अली को नवाबी के पद से हटाया जा सके, लेकिन ऐसा संभव न हो सका। वजीर अली को नवाब बनाने की स्वीकृति बड़ी बेगम (आसफुद्दौला की माँ), नवाबी शासन के अधिकारी और अवध के निवासियों द्वारा दी जा चुकी थी। इसी समय अंग्रेजी संरक्षण प्राप्त 'सआदत अली', आसफुद्दौला का भाई तथा शिराजुद्दौला का पुत्र, मसनद पर अपने अधिकार की घोषणा करता है। वह स्वयं को वैध

डॉ. रजत शर्मा

शिक्षा : पी-एच.डी. (हिंदी)।

प्रकाशन : यूजीसी द्वारा मान्यताप्राप्त पत्रिकाओं में कई शोधपत्र प्रकाशित।

संप्रति : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत में संपादकीय सहायक के पद पर कार्यरत।

संपर्क : मोबाइल– 9582749094

ईमेल– rajat.sh148@gmail.com

उत्तराधिकारी घोषित करते हुए वजीर अली को 'फर्राश का पुत्र' कहता है। इस तरह वह स्वयं को अंतिम नवाबी वंशज बताता है। दरअसल, सआदत अली द्वारा वजीर अली को फर्राश का पुत्र कहने के मूल में अंग्रेजों की 'डॉक्ट्रिन ऑफ लैप्स' अर्थात 'हड़प नीति' ही थी।

वजीर अली के मसनद पर बैठने के बाद सर जॉन शोर लखनऊ जाने की योजना बना रहा होता है, इसी दौरान 29 नवंबर और 01 दिसंबर को मिले पत्रों से वह वजीर अली की सशक्त सेना से भी परिचित होता है। इसीलिए वह लखनऊ प्रवास की योजना को स्थगित कर देता है। दूसरी तरफ वजीर अली अफगानिस्तान के जमनशाह से भी मजबूत संबंध स्थापित करते हैं। अंग्रेज इस संबंध की अहमियत को समझते थे। वे जानते थे कि यदि यह संबंध ऐसे ही बरकरार रहा तो अंग्रेजों की शक्ति क्षीण होते समय नहीं लगेगा। इस कारण भी वह वजीर अली को मसनद से हटाने का षड्यंत्र करते हैं। सआदत अली की घोषणा के बाद 30 सितंबर, 1797 को सर जॉन शोर के आदेश पर लम्सदन गुप्त जाँच करवाने की दिशा में अग्रसरित होता है। दिखावटी जाँच प्रक्रिया का निर्णय वजीर अली के विरोध में दर्ज होता है। वजीर अली को 'फर्राश का पुत्र' बताकर इस भ्रम के आधार पर 07 जनवरी, 1798 में वजीर अली को मसनद से हटाया जाता है। मसनद से हटने के बाद भी परिस्थितियाँ सआदत अली के अनुकूल नहीं होतीं। आम प्रजा वजीर अली के पक्ष में खड़ी होती है। इसीलिए सर जॉन शोर कंपनी सेना के संरक्षण में सआदत अली को कानपुर से लखनऊ लाता है। कानपुर आने के बाद वह हाथी पर सआदत अली के साथ सवारी करते हुए उसके वैध उत्तराधिकारी होने की घोषणा करता है। इस घोषणा के साथ-साथ वह वजीर अली के फर्राश का पुत्र होने की बात भी कहता है। यह सवारी जबरन भ्रमित करने वाले झूठ को स्थापित करने के लिए निकाली जाती है। 21 जनवरी, 1798 को सआदत अली को नवाब बनाया जाता है। सआदत अली को इसके बावजूद नवाबी खिताब खतरे में लगता है। इसीलिए वह वजीर अली को लखनऊ से बनारस भेज देता है, इस शर्त के साथ कि डेढ़ लाख की पेंशन वह वजीर अली को देगा।

वजीर अली की क्रांति बनारस आने के बाद आरंभ होती है। वह अंग्रेजों को हटाने के लिए सिंधिया के साथ संधि करते हैं। वह ढाका और मुर्शिदाबाद के नवाब, गया जिले में टेकारी के राजा मित्रजीत सिंह से भी संबंध मजबूत करते हैं। लखनऊ से बनारस आने के बाद वजीर अली बनारस की सीमा पर 'महदूद्दौस गार्डन' पैलेस में निवास करते हैं। महदूद्दौस गार्डन में रहते हुए वह इस स्थान को सुरक्षित किले में परिवर्तित कर देते हैं। इसकी सुरक्षा उनकी स्वनिर्मित एक छोटी टुकड़ी करती है। इस टुकड़ी में वह घुड़सवार और पैदल सैनिक दोनों को सम्मिलित करते हैं। वह जहाँ भी जाते उनका नक्कारा पहले बजता, ताकि लोगों को उनके आगमन की सूचना मिल सके। बनारस में भी वह नवाब के भाँति रहे। गुप्त रूप से मजबूत क्रांति की दिशा में वह प्रयासरत रहे।

बनारस में रहकर उनके पहले विद्रोह का प्रयास जमनशाह को भेजे गए पत्र के माध्यम से उजागर होता है। 'मिरतुल अहवाल' का लेखक इसे लिखते हुए बताता है कि "वजीर अली ने उचित उपहारों के साथ मुल्ला मुहम्मद को जमनशाह के पास एक प्रस्ताव मदद के लिए भेजा था।" इस समय जमनशाह की शक्तिशाली सेना लाहौर में स्थित थी। यह प्रस्ताव कंपनी के विरुद्ध एकजुट होने की योजना के लिए भेजा गया। अंग्रेजों को इस पत्र की सूचना मिलती है। वह तुरंत अटक के राजा को पत्र जब्त करने की सूचना भेजते हैं। अटक का राजा मुल्ला मुहम्मद को मारकर पत्र को कलकत्ता भिजवा देता है। उनके इस प्रकार के प्रयासों को देखकर अंग्रेज उनकी हत्या की योजना पर जोर देने लगते हैं।

इस दौरान बनारस में दो प्रमुख अंग्रेज अधिकारी जी.पी. चेरी (The Political agent of the governor-general) और जॉन डेविस (Judge and Magistrate of the district and city court) अंग्रेजी कंपनी के प्रतिनिधि के तौर पर शासन व्यवस्था

को नियंत्रित करते हैं। वे 23 दिसंबर, 1798 को एक बड़े लाट, कंपनी रेजीडेंट जॉन लम्सडेन को पत्र लिखकर दो इच्छाएँ प्रकट करते

वजीर अली को 15-16 जनवरी को कलकत्ता जाने की सूचना दी जाती है। इसीलिए वह 14 जनवरी को संघर्ष की तिथि तय करते हैं। 13 जनवरी की शाम वह चेरी को सूचित करते हैं कि अगली सुबह वह नाश्ते के समय उनसे मिलने आएँगे। अगली सुबह जब चेरी वजीर अली का इंतजार कर रहा होता है तभी वजीर अली का एक दूत चेरी के पास आकर परिस्थितियों की देख-रेख करके चला जाता है।

हैं—पहला, अवध को किसी तरह हड़पना, ताकि कंपनी का राज पश्चिमोत्तर सीमा तक फैलाया जा सके और दूसरा, वजीर अली को हटाकर कलकत्ता लाया जाना। अंग्रेज समझ चुके थे कि अवध क्षेत्र 'बनारस' में वजीर अली को रखना खतरनाक है। अतः इस योजना को फलीभूत करने के लिए जी.पी. चेरी कलकत्ता जाने की सूचना वजीर अली को देता है। दरअसल, कलकत्ता ले जाने की योजना में उनकी हत्या होना तय था। इसे वजीर अली भी जान चुके थे, इसीलिए वह संघर्ष की योजना बनाते हैं।

वजीर अली को 15-16 जनवरी को कलकत्ता जाने की सूचना दी जाती है। इसीलिए वह 14 जनवरी को संघर्ष की तिथि तय करते हैं। 13 जनवरी की शाम वह चेरी को सूचित करते हैं कि अगली सुबह वह नाश्ते के समय उनसे मिलने आएँगे। अगली सुबह जब चेरी वजीर अली का इंतजार कर रहा होता है तभी वजीर अली का एक दूत चेरी के पास आकर परिस्थितियों की देख-रेख करके चला जाता है। कुछ क्षण बाद नक्कारों की आवाज से चेरी को वजीर अली के आगमन की सूचना मिलती है। वजीर अली 200 आदमियों की टुकड़ी के साथ प्रांगण में प्रवेश करते हैं। जमादार चेरी को इस टुकड़ी से परिचय कराते हुए बताता है कि वजीर अली हथियारबंद लोगों के साथ हैं। चेरी उनका स्वागत कर उन्हें घर के अंदर ले जाता है।

वजीर अली, इज्जत अली और उनके ससुर शईफ अली (Shief Ali) के साथ-साथ चार और संरक्षक घर के अंदर जाते हैं। कमरे में चेरी के साथ-साथ उसका प्राइवेट सेक्रेट्री ईवान भी मौजूद होता है। वजीर अली अपनी बात कहना आरंभ करते हैं। कुछ समय बाद ही वारिस अली चेरी के समीप आकर खड़े हो जाते हैं। इस संकेत को समझकर दो संरक्षक चेरी को पीछे से पकड़ लेते हैं। उसी क्षण वजीर अली अपनी तलवार से उसका सिर कलम कर देते हैं। इसके बाद वजीर अली समीप में रह रहे जॉन डेविस के घर पर हमला करते हैं। डेविस सुबह की सैर के समय वजीर अली के दल को चेरी के घर की ओर जाते देख चुका था। इसीलिए वह घर पहुँचकर इसकी सूचना पुलिस को देता है। साथ ही, एक पत्र चेरी के नाम लिखकर भेज देता है और उसके जवाब का बेसब्री से इंतजार करता है, लेकिन उसे दूर से ही वजीर अली का काफिला आता दिखाई पड़ता है। वजीर अली की टुकड़ी डेविस के घर आती है, लेकिन कुछ समय बाद चली जाती है।

डेविस के घर से जाने के बाद वजीर अली बनारस से कूच कर जाते हैं। कंपनी की टुकड़ी भी वजीर अली का पीछा करती है। वजीर अली और अंग्रेजी टुकड़ी का सामना बेतुल में होता है। बेतुल में क्रांतिकारी सहयोगियों को पाकर वजीर अली की शक्ति प्रबल हो जाती है। लेकिन, इसके बावजूद इस युद्ध में वजीर अली हार जाते हैं और उनकी सेना तितर-बितर हो जाती है। वह किसी तरह अंग्रेजों से बच निकलते हैं। बाद में वह कई राजाओं से सहायतार्थ संपर्क भी स्थापित करते हैं। अंततः, 1799 में वह कंपनी द्वारा पकड़ लिए जाते हैं। उन्हें कैद कर कलकत्ता के फोर्ट विलियम किले में बंदी बना लिया जाता है। इस कैद में ही 18 मई, 1817 को 36 वर्ष की उम्र में उनकी मृत्यु होती है।

nbt.india
एषः सूते सकलम्

आगामी अंक के लिए
पुस्तक संस्कृति

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास की द्विमासिक पत्रिका

पत्रिका का **मार्च-अप्रैल 2023** का अंक **'डिजिटल पुस्तकालय'** विशेषांक होगा, जिसमें डिजिटल माध्यम से सरकारी/गैर-सरकारी संस्थाएँ, जो ऑनलाइन मुफ्त पठन सामग्री उपलब्ध करा रही हैं, से संबंधित सामग्री होगी।

इस अंक के लिए सामग्री **20 दिसंबर, 2022** तक भेज सकते हैं।

लेखकों हेतु निर्देश : 1. सामग्री अधिकतम दो हजार शब्दों तक हो। 2. रचना मौलिक एवं अप्रकाशित होनी चाहिए। 3. रचना के साथ संदर्भ के चित्र अवश्य भेजें। 4. लेखक का चित्र, पाँच पंक्ति में परिचय (संपूर्ण जीवनवृत्त नहीं) भेजें, जिसमें संप्रति, प्रकाशन, सम्मान आदि का विवरण हो। संपर्क के लिए पता, ई-मेल या फोन नंबर जो भी सार्वजनिक करना चाहें, भेजें। 5. किसी विशेषांक में प्रकाशनार्थ सामग्री समयसीमा के पश्चात भेजने पर स्वीकार्य नहीं होगी। 6. पत्रिका के संपादक के ई-मेल पर भेजी गई रचनाएँ ही स्वीकार्य होंगी। रचना कृति, यूनिकोड/शिवा मीडियम फॉण्ट में एम.एस. वर्ड या पेजमेकर में ही हो।

नोट : *पत्रिका का मुख्य उद्देश्य पुस्तक प्रोन्नयन और पठन अभिरुचि के विकास के लिए उपयोगी सामग्री का प्रकाशन करना है। कहानी-कविताओं के लिए इसमें कम ही स्थान है।*

संपादक (पुस्तक संस्कृति), राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070.
ई-मेल : editorpustaksanskriti@gmail.com • दूरभाष : 011-26707758, 26707876

गांधी पर मीरा का प्रभाव

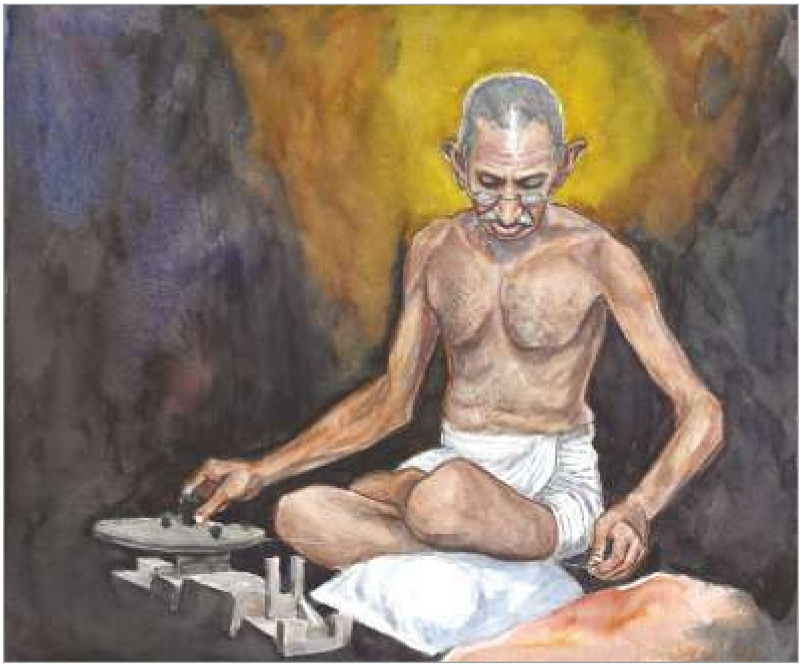

मध्यकाल की महान भक्त कवयित्री मीरा के पदों का प्रभाव जनमानस पर पड़ा है। विभिन्न संतों और भक्तों ने मीरा की साधना और दृढ़ विश्वास की महिमा को गाया है। मीरा का जीवनचरित केवल महिलाओं के लिए ही नहीं, पुरुष वर्ग के लिए भी उतना ही प्रेरणास्पद रहा है। राजस्थान और गुजराती पूर्व में एक ही अंचल की भाषाएँ रही हैं, इसलिए उनके घरों में कई शब्द व ध्वनियाँ आज भी साम्यता रखती हैं। भौगोलिक परिवेश भी कई स्थानों पर समानता रखता है। मीरा मारवाड़ में जन्मी, मेवाड़ में ब्याही, ब्रज में रहकर कृष्ण की आराधना की और द्वारका में जाकर विलीन हो गईं।

मीरा के प्रेम का धागा कच्चा और कोमल था, लेकिन वह मजबूत था। ऐसा प्रेम जो लोगों को हजारों मील का फासला तय कर आने को मजबूर कर देता है। वह किसी एक अंचल या बोली-बाणी में नहीं बँधी। उसके तो आराध्य श्री कृष्ण थे। वो जैसे रखें, वैसे ही रहना है। 'बेचे तो बिक जाऊँ' यानी सर्वस्व समर्पण।

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के प्रणेता राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने भारतीय समाज में सामाजिक व धार्मिक समरसता स्थापित करने में अपना सर्वस्व योगदान दिया। वे नानक व कबीर से भी प्रभावित रहे। संतों और भक्तों के चरित ने गांधी को गहनता से प्रभावित किया। सभी धर्मग्रंथों का उन्होंने अध्ययन किया। गीता, रामायण, बाईबिल व कुरान शरीफ ने मूलभूत मूल्यों को अपने मानव समाज के सम्मुख रखने का प्रयास किया और अपने जीवन मे सत्य, अहिंसा का प्रयोग कर आम आदमी को अपनी उपस्थिति दर्ज करवाने के अचूक नुस्खे दिए। असहयोग व सविनय अवज्ञा इसी के उदाहरण हैं।

संपूर्ण गांधी वांग्मय का अध्ययन करें तो कई बिंदु निकलकर आते हैं, परंतु एक विषय जो महत्वपूर्ण रूप से हमारे सामने आता है, वह है मीरा। गांधी, मीरा से बहुत प्रभावित थे। त्याग, तपस्या, दृढ़ आत्मविश्वास जैसे जीवन मूल्यों को गांधी ने मीरा से सीखा। गांधी स्वयं लिखते हैं कि मैं मीराबाई का शिष्य हूँ, इसलिए किंचित परिवर्तन के साथ मुझे भी गाने का अधिकार है—

'काचे रे तांतणे मने हरिजीये बाँधी
जेम ताणे तेम तेमनी रे'

अर्थात 'कच्चे धागे से मुझे हरिजी ने बाँध लिया है। वे जिधर खींचते हैं, मैं उधर

डॉ. महीपाल सिंह राठौड़

जन्म : 1972, चुई, नागौर, राजस्थान।

शिक्षा : पी-एच.डी.।

प्रकाशन : चार पुस्तकें प्रकाशित।

सम्मानः राजस्थानी भाषा और साहित्य में विशेष योगदान के लिए वीर दुर्गादास समिति द्वारा रजत पदक।

संप्रति : एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर।

संपर्क : मोबाइल– 9413323330

ईमेल– mpsrchopasni@gmail.com

ही मुड़ जाती हूँ, कबीर भी कहते हैं—

कबीर कुत्ता राम का,
मुतिया मेरा नाऊँ।
गले राम की जेवड़ी,
जित खेंचूं तित जाऊँ।

"मीरा की वाणी में दुनिया के पीड़ितों की अभिव्यक्ति है, इसलिए वह हर कालखंड में व देश-देशांतर में अपनाई गई। गांधी का मत था कि संकट में हमें साहस से काम लेना चाहिए। ईश्वर से बड़ा भक्त है और भक्त के तेज को ईश्वर सहन नहीं कर सकता, इसलिए स्वयं ईश्वर भक्त के पास चलकर आता है।"

गांधी कहते हैं, "इस धागे के इशारे पर नाचने के लिए मैं सदा तत्पर रहता हूँ और इसलिए सदा ही सूत कातता रहा हूँ और मन के मुसाफिर को याद दिलाता हूँ कि अपने देश की ओर रवाना होना है। जहाँ जाऊँगा वहाँ मेरा प्रभु तो होगा ही, इसीलिए मैं निर्भय हूँ।"

मीरा के 'अंसुवन जल सींच सींच प्रेम बेल बोई रे' की तरह गांधी भी प्रेम के महत्व को समझते थे। प्रेम की पुकार टाली नहीं जा सकती। 15 नवंबर, 1917 को मगन लाल मोती हारी से एक पत्र गांधी को लिखते हैं, जिसमें गांधी कहते हैं, "जीवन में श्रद्धा, आशा

और प्रेम तीन चीजें ही स्थायी हैं। उनमें प्रेम श्रेष्ठ है। यदि प्रेम नहीं है तो वह व्यक्ति खाली घड़े की तरह है।" मीरा को प्रेम की कटारी गहरी लगी थी। प्रेम की वैसी कटारी हमारे भी हाथ लगे और हममें उसे भोंकने का बल आ जाए तो हम दुनिया को हिला दें। प्रेम के अंतर में होते हुए भी मैं हर क्षण उसके अभाव का अनुभव करता हूँ।

महात्मा गांधी जब मीरा का स्मरण करते तो स्वयं भी उसमें तल्लीन हो जाते। नरसी मेहता और मीरा के पद उनकी सभाओं में गाए जाते। गांधी मीरा को भारतीय नारियों के लिए एक प्रेरणास्रोत के रूप में देखते थे। आधुनिक भारत में भी मीरा के जीवनचरित के महत्व को उन्होंने स्वीकारा।

अपने आराध्य के प्रति समर्पित मीरा की भक्ति नारी चेतना, सत्ता का मौन विद्रोह आधुनिक भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में हमारे लिए प्रेरणा का प्रतीक रहा। नारी का स्वतंत्र अस्तित्व है। वह केवल भोग-विलास की वस्तु नहीं है।

मीरा के जीवन दर्शन व चरित को राष्ट्रीय आंदोलन से जोड़कर गांधी ने एक महत्वपूर्ण कार्य किया। मीरा केवल गांधीजी के लिए ही प्रेरणा स्रोत नहीं रहीं, वह आमजन से जुड़कर और भी महत्वपूर्ण बन गईं।

गांधी अफ्रीका में रहते हुए मीरा की वाणी से सत्याग्रह की शक्ति प्राप्त करते हैं।

मीरा की वाणी में दुनिया के पीड़ितों की अभिव्यक्ति है, इसलिए वह हर कालखंड में व देश-देशांतर में अपनाई गई। गांधी का मत था कि संकट में हमें साहस से काम लेना चाहिए। ईश्वर से बड़ा भक्त है और भक्त के तेज को ईश्वर सहन नहीं कर सकता, इसलिए स्वयं ईश्वर भक्त के पास चलकर आता है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भी मीरा का जीवन व काव्य हमें प्रेरणा प्रदान करता है।

मीरा यह नहीं कहतीं कि 'कोउ नृप हो हमें का हानि', वह कहती हैं 'राणा जी म्हारो कांई करसी', यानी एक संघर्ष करने की शक्ति देती है मीरा की वाणी। इसीलिए गांधी ने इसे अपनाया और भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन से जोड़कर भारतीय नारियों को प्रेरणा प्राप्त करने का संदेश दिया।

अंग्रेजों ने झारखंड में वृक्षों को बनाया था फाँसी घर

मानवीय संवेदना व प्रकृति के बीच तादात्म्य स्थापित करने की झलक झारखंड के हर उत्सव में देखी जा सकती है। यहाँ के कई वृक्ष अस्तित्व रक्षा, आध्यात्मिक जीवन दर्शन व सामाजिक परंपराओं के प्रतीक के तौर पर उपस्थित हैं। सखुआ और करम वृक्ष की महत्ता को भूल जाने का मतलब है झारखंड की संस्कृति को दरकिनार करना। सखुआ के बाद कोई दूसरा बड़ा सांस्कृतिक वृक्ष है तो वह करम पेड़ ही है। भेलवा, करंज, बरगद, पीपल, जामुन, केंद, महुआ और आम वृक्ष झारखंड की सांस्कृतिक धरोहर के रूप में माने और जाने जाते हैं। करम को झारखंड का पवित्रतम वृक्ष माना जाता है। इसलिए श्रद्धा, विश्वास और आदर के साथ इसका नाम लिया जाता है। आम और महुआ के बिना तो झारखंडी समाज का वैवाहिक कार्यक्रम ही अधूरा रह जाता है।

झारखंड की सांस्कृतिक परिभाषा में कहें तो इन वृक्षों को अति प्राचीन काल से ही पवित्र तथा संस्कृति वृक्ष माना जाता है। अंग्रेजों ने झारखंड समेत भारत के विभिन्न हिस्सों में इन पेड़ों को सामूहिक फाँसी घर बना दिया। पेड़, जो पथिकों को छाँव प्रदान करते, उनके चबूतरों पर लोग गीत गाते, नौटंकी करते, पंचायत बैठती, बच्चे तरह-तरह के खेल खेलते, धमाचौकड़ी मचाते, एक दिन उसी पर अंग्रेजों ने विद्रोहियों की लाशें टाँगकर छोड़ दी। राँची में भी कमिश्नर के पुराने हाता में टँगी थी 200 से ज्यादा लाशें। इस तरह की घटनाएँ केवल राँची में ही नहीं, बल्कि झारखंड के विभिन्न क्षेत्रों में हुई। क्रांतिवीर तिलका माँझी को 1785 में भागलपुर में बरगद पेड़ में फाँसी दी गई। 01 जनवरी, 1838 को जगन्नाथपुर में पोटो सरदार और नारो हो को पीपल पेड़ में फाँसी दी गई। 02 जनवरी, 1838 बोड़ो हो,

मनोज कुमार कपरदार

संप्रति : समाचार संपादक, रांची एक्सप्रेस (हिंदी दैनिक)।

लेखन/प्रकाशन : दो दशक से पूर्णकालिक और अंशकालिक तौर पर पत्रकारिता में सक्रिय है। विभिन्न विषयों पर सैकड़ों आलेख क्षेत्रीय एवं राष्ट्रीय स्तर की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित तथा आकाशवाणी से प्रसारित। एक पुस्तक 'झारखंड दर्पण' प्रकाशित।

सम्मान : पुलिस पब्लिक हेल्पलाइन राष्ट्रीय सम्मान, झारखंड सेवा रत्न सम्मान, साहित्य शिखर सम्मान, काव्य शिरोमणि सम्मान और जनप्रिय लेखक 2022 सम्मान से सम्मानित।

संपर्क : मोबाइल– 8210924546

ईमेल– manojkapardarjh@gmail.com

पंडवा हो को फाँसी दी गई। 15 मई, 1856 को गोड्डा के राज कचहरी स्थित कझिया नदी के किनारे फाँसी पर लटका दिया गया था। 10 नवंबर, 1855 को कुछ गद्दारों ने कान्हू को गिरफ्तार

> **सन् 1857 की क्रांति में विद्रोहियों द्वारा बंगाल कोल फैक्ट्री राजहरा में आग लगा देने और उनकी मशीनों को छतिग्रस्त कर देने के बाद अंग्रेजों ने इलाके के 500 लोगों को बरगद के पेड़ पर लटका कर फाँसी दे दी थी। जग्गू दीवान की गिरफ्तारी के लिए अंग्रेजों ने केंदूझर रियासत से चिंतामणि भंज, रामचंद्र सिंह, किशोर सिंह को पोड़ाहाट भेजा। इसी समय संबलपुर से कैप्टन ली भी जग्गू दीवान और राजा को गिरफ्तार करने पहुँचा। अक्तूबर 1857 में आखिरकार जग्गू दीवान पकड़ लिए गए। उनको सजा के रूप में क्रूरतम फैसला सुनाया गया। उन्हें चक्रधरपुर राजमहल के सामने बरगद के पेड़ पर लटका कर फाँसी दे दी गई।**

करवाया था। सिद्धो, चाँद और भैरव महेशपुर के युद्ध में शहीद हो गए। 23 जनवरी, 1856 को कान्हू को बड़हैत में एक पेड़ पर लटका कर फाँसी दे दी गई। 15 मई, 1856 को चानकू महतो को गिरफ्तार कर गोड्डा के राजकचहरी स्थित कझिया नदी के किनारे बरगद के पेड़ पर लटकाकर सरेआम फाँसी दे दी गई। 16 जून, 1857 को

सलामत अली, अमानत अली को देवघर के रोहिणी में विशाल आम्रकुंजों की डालियों पर लटकाकर फाँसी दे दी गई। 03 अक्तूबर, 1857 को चतरा में 150 सैनिकों को फाँसी दे दी गई। 04 अक्तूबर, 1857 को सूबेदार जय मंगल पांडे और नादिर अली को चतरा में फाँसी दी गई, जबकि 130 क्रांतिकारियों को आम के पेड़ों पर लटकाकर फाँसी दी गई थी। वे स्थान आज भी 'फाँसी हारी तालाब', 'मंगल तालाब', 'भुतहा तालाब' तथा 'हरजीवन तालाब' के नाम से जाने जाते हैं।

सन् 1857 की क्रांति में विद्रोहियों द्वारा बंगाल कोल फैक्ट्री राजहरा में आग लगा देने और उनकी मशीनों को छतिग्रस्त कर देने के बाद अंग्रेजों ने इलाके के 500 लोगों को बरगद के पेड़ पर लटकाकर

फाँसी दे दी थी। जग्गू दीवान की गिरफ्तारी के लिए अंग्रेजों ने केंदूझर रियासत से चिंतामणि भंज, रामचंद्र सिंह, किशोर सिंह को पोड़ाहाट भेजा। इसी समय संबलपुर से कैप्टन ली भी जग्गू दीवान और राजा को गिरफ्तार करने पहुँचा। अक्तूबर, 1857 में आखिरकार जग्गू दीवान पकड़ लिए गए। उनको सजा के रूप में क्रूरतम फैसला सुनाया गया। उन्हें चक्रधरपुर राजमहल के सामने बरगद के पेड़ पर लटकाकर फाँसी दे दी गई। 06 जनवरी, 1858 को शेख भिखारी और टिकैत उमराव सिंह को टैगोर हिल के समीप एक बरगद पेड़ से लटकाकर फाँसी दे दी गई। 16 अप्रैल, 1858 को ठाकुर विश्वनाथ शाहदेव को राँची के जिला स्कूल के समक्ष कदम पेड़ पर फाँसी दे दी गई थी और फिर 21 अप्रैल, 1858 को गणपत राय को भी जिला स्कूल के समक्ष कदम पेड़ में फाँसी पर लटका दिया गया था। 1860 में जग्गू दीवान को फाँसी दी गई थी।

गया मुंडा और उनके पुत्र सालरे मुंडा को 22 अक्तूबर, 1901 को प्रातः छह बजे फाँसी दे दी गई थी। झारखंड की राजधानी राँची का पहाड़ी मंदिर भी जंग-ए-वीरों की शहादत स्थल रही है।

दरअसल, स्वतंत्रता के पूर्व इसी पहाड़ी पर स्वतंत्रता सेनानियों को फाँसी दी जाती थी। इसीलिए इस पहाड़ी को 'फाँसी टुंगरी' भी कहा जाता था।

साहित्य का पेड़ और किताब वाली आंटी

नई दिल्ली स्थित मंडी हाउस में 'श्रीराम सेंटर फॉर परफॉर्मिंग आर्ट्स' एक प्रदर्शन कला केंद्र है। यहाँ अभिनय एवं नाटक की बारीकियों को सीखने के लिए युवाओं का नित्य-प्रति आना-जाना लगा रहता है। अंग्रेजी में संक्षिप्त रूप से इसे एस.आर.सी. कहा जाता है। सामने की साफ-सुथरी सड़क से गुजरते हुए मेरी नजर श्रीराम सेंटर के मुख्यद्वार के सामने एक बकुल (मौलसिरी) के वृक्ष पर जाती है, जिसके चारों तरफ सीमेंट का गोल चबूतरा बना हुआ है। वृक्ष के मोटे तने पर चिपके आयताकार कागज पर खूबसूरत हस्तलिपि में लिखा है—'साहित्य का पेड़' और इसके नीचे एक दूसरा कागज भी चस्पा किया गया है, जिस पर लिखा है—'किताब वाली आंटी'। फिर ये पंक्तियाँ लिखी हैं—

किताबें हैं तो दुनिया है, किताबें हैं तो शांति है।
किताबों से मोहब्बत है, किताबें हैं तो क्रांति है॥

कमलेश पाण्डेय 'पुष्प'

जन्म : 16 अप्रैल, 1965, गाजीपुर, उत्तर प्रदेश।

शिक्षा : स्नातकोत्तर (हिंदी)।

संप्रति : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत में संपादकीय सहायक के पद पर कार्यरत।

प्रकाशन : बाल कहानी संग्रह 'असली गुल्लक', कहानी संग्रह 'अनुराधा लौट आओ' प्रकाशित।

संपर्क : मोबाइल— 9873575920

ईमेल—kamleshpandey.65@gmail.com

वृक्ष के चबूतरे पर ही साधारण सलवार सूट पहने किताब वाली आंटी बैठी हैं, जिनका नाम है 'संजना तिवारी'। उनके सामने दो फोल्डिंग चारपाइयों पर ढेर सारी पुस्तकें करीने से सजी हुई हैं। श्रीराम सेंटर में आने-जाने वाले युवा उन्हें एस.आर.सी. आंटी के नाम से संबोधित करते हैं। उनके बगल में ही घड़े में ठंडा पानी रखा है, जिसे वह दिन में कई बार स्वयं भरती हैं। उस घड़े से बिना रोक-टोक कोई भी पानी पीने के लिए स्वतंत्र है।

संजना जी का कहना है कि उनका बचपन से ही हिंदी भाषा की पुस्तकों के प्रति लगाव रहा है। उनका पुस्तक प्रेम इस उम्र में भी बना हुआ है, तभी तो वह हिंदी पुस्तकों की बिक्री के लिए अपनी जिंदगी का बहुमूल्य समय दे रही हैं। वह मूलतः बिहार प्रदेश के सीवान जिले के एक गाँव 'कोहणवलियाँ' की रहने वाली हैं। साहित्य में बचपन से ही रुझान है। उन्होंने बिहार प्रदेश से ही 12वीं की शिक्षा के बाद दिल्ली विश्वविद्यालय (स्कूल ऑफ ओपन लर्निंग) से स्नातक की शिक्षा प्राप्त की है। उनकी इच्छा आगे स्नातकोत्तर की शिक्षा ग्रहण करने की भी है। उनके पति श्री राधेश्याम तिवारी जी रेवाड़ी के एक समाचार पत्र में नौकरी करने के बाद सेवानिवृत्त हो चुके हैं। बेटा उत्कर्ष जगदलपुर के कॉलेज से मेडिकल की शिक्षा प्राप्त कर चुका है। वह अपना निजी क्लीनिक खोलना चाहता है और बेटी अनामिका सिविल सेवा परीक्षा की तैयारी कर रही है।

शाम के तीन बजे गर्मी के मौसम की धूप सीधे किताब वाली आंटी की दुकान को

अपने आगोश में ले चुकी थी। मैंने उनसे पूछा, "आप तो धूप में बैठकर पुस्तकें बेच रही हैं, धूप से बचने के लिए कुछ व्यवस्था क्यों नहीं कर लेतीं?" इस पर उन्होंने मुस्कुराते हुए कहा, "मेरी तो जिंदगी

संजना जी स्टाल से एक युवा ने एक पुस्तक हाथ में लेकर पूछा कि इस किताब में क्या है? तब उन्होंने बिना किसी संकोच के जवाब दिया, "किताब में कुछ-न-कुछ अच्छा ही होगा, तुम ले जाओगे तो उसे पढ़कर तुम्हारा जीवन बदलेगा, क्योंकि किताबें होती ही हैं जीवन बदलने के लिए, बस पढ़ने वाला किताबी ज्ञान को जीवन में ईमानदारी से उतारने की कोशिश करे।"

ही धूप की तरह तप रही है, मुझे धूप में बैठने की आदत है।" उन्होंने आगे बताया कि वह इसी स्थान पर पिछले 25 सालों से हिंदी पुस्तकें और पत्रिकाएँ बेच रही हैं। पहले वह जमीन पर पुस्तकें सजाती थीं, तब यहाँ कई अमीर लोग अपनी कारों के पहिए पुस्तकों पर चढ़ा देते थे, जिससे पुस्तकें खराब हो जाती थीं। अभी हाल ही में मैंने किताबों को फोल्डिंग चारपाई पर रखना शुरू किया है। मीडिया के लोग और नाट्यकर्मी युवा लोग मेरा बहुत ध्यान रखते हैं। पुस्तकों की बिक्री के बारे में पूछने पर वह थोड़ा गंभीर हो गईं और बोलीं कि पुस्तक बेच कर घर का खर्च नहीं चल पा रहा है, पर जीवन में कुछ अच्छा करना बहुत जरूरी होता है। मुझे हिंदी पुस्तकें और पत्रिकाएँ बेचना बहुत अच्छा लगता है। जीवन है तो संघर्ष है। संघर्ष से सब-कुछ हासिल किया जा सकता है। मैं अपना कर्तव्य कर रही हूँ, अपने कर्म पर विश्वास रखती हूँ। वह सप्ताह के पूरे दिन दुकान खोलती हैं और रात के नौ बजे तक यहाँ बैठती हैं। पुस्तकों पर 10 प्रतिशत की छूट देती हैं। पिछले वर्षों में कोरोना महामारी के चलते लॉकडाउन के कारण बिलकुल ही बिक्री नहीं हो पाई है।

संजना जी के स्टाल से एक युवा ने एक पुस्तक हाथ में लेकर पूछा कि इस किताब में क्या है? तब उन्होंने बिना किसी संकोच के जवाब दिया, "किताब में कुछ-न-कुछ अच्छा ही होगा, तुम ले जाओगे तो उसे पढ़कर तुम्हारा जीवन बदलेगा, क्योंकि किताबें होती ही हैं जीवन बदलने के लिए, बस पढ़ने वाला किताबी ज्ञान को जीवन में ईमानदारी से उतारने की कोशिश करे।"

तभी कुछ लड़कियाँ किसी नाटक का प्रदर्शन देखने के उद्‌देश्य से वहाँ आईं और किताब वाली आंटी को बड़े ही अदब से नमस्ते कर पुस्तकें हाथों में लेकर पन्ने पलटने लगीं। एक लड़की ने पुस्तक पलटते हुए ही उनसे पूछा, "आंटी जी, आप पुस्तकें बेचती भी हैं कि आप यूँ ही बैठकर अपना बहुमूल्य समय व्यतीत करती हैं?" इस सवाल पर संजना जी के चेहरे पर गंभीरता आ गई। उन्होंने कहा, "बिटिया, हमें जीवन में अपना कर्तव्य सकारात्मक सोच के साथ ईमानदारीपूर्वक निभाना चाहिए। अगर प्रतिदिन न हो तो प्रति सप्ताह, प्रति सप्ताह न हो तो प्रति पखवाड़ा या प्रति माह एक व्यक्ति भी मेरे स्टाल से कोई पुस्तक खरीदकर ले जाता है और उसे मनोयोग से पढ़ता है तब न केवल उसका जीवन खुशहाल होता है, बल्कि उसके पूरे परिवार को पुस्तकों से लगाव हो जाता है। जिसे पुस्तकों से लगाव होता है, वह लेखक बनता है, कलाकार बनता है, उच्च पद पर आसीन होता है, देश का श्रेष्ठ नागरिक बनता है।" अगले ही पल वह लड़की भी गंभीर हो गई। संजना जी के इस कथन से वह इतनी प्रभावित हुई कि उसने उनके स्टाल से स्वयं तीन पुस्तकें खरीदीं और अपनी सहेलियों को भी कोई-न-कोई पुस्तक खरीदने के लिए प्रेरित किया।

संजना जी ने आगे बताया कि वे विभिन्न प्रकाशनों में स्वयं जाकर अच्छी-अच्छी पुस्तकें खरीद लाती हैं, अपने स्टॉल पर बेचने के लिए। प्रकाशन वाले उन्हें विशेष छूट नहीं देते, अतः बिक्री से फायदा बहुत कम होता है। मेरे यह पूछने पर कि आजकल में कौन-सी पुस्तक ज्यादा बिकी है, तब उन्होंने बताया कि मोहन राकेश की पुस्तक 'आषाढ़ का एक दिन' की माँग ज्यादा हो रही है। उन्होंने 'संजना प्रकाशन' नाम से एक प्रकाशन भी खोला हुआ है। उन्होंने अपने प्रकाशन की निम्नलिखित पुस्तकें मुझे दिखाईं—

'कभी यूँ भी तो हो' : रोशन झा (काव्य संग्रह), 'हीर रांझा' : काजल सूरी (नाटक), 'उड़ जाएगा हंस अकेला' : सोहन चौहान (काव्य संग्रह), 'हब्बा खातून बुलबुले कश्मीर' : काजल सूरी (नाटक), 'एक और मीटिंग' : जयवर्धन (नाटक), 'कमी पड़ गई बहुओं की' : अशोक तारा (नाटक)।

संजना जी के पति श्री राधेश्याम तिवारी ने भी कुछ पुस्तकें लिखी हैं। उनकी निम्नलिखित किताबें भी उनके बुक स्टाल पर थीं—'कोहरे में यात्रा' (संस्मरण), 'कनस्तर में गंगा' (कविता संग्रह), 'गालिब की माँ' (कहानी संग्रह)।

संजना जी के बुक स्टाल पर अकसर साहित्यकार लोग भी आते हैं। सभी नवयुवक नाट्यकर्मी बड़े प्रेम से 'दीदी', 'आंटी' कहकर उनके पाँव छूते हैं, फिर हालचाल पूछते हैं। वह मुस्कुराते हुए उन्हें आशीर्वाद देती हैं। हाँ, पुस्तक खरीदने वाले को वह बिल अवश्य देती हैं। उनके पास 'संजना बुक्स' नाम से छपा हुआ पैड है। वह आगे बताती हैं कि उनके अपने प्रकाशन की पुस्तकें बहुत ही कम बिकती हैं। उन्होंने कई पुस्तकालयों में भी संपर्क किया, परंतु कुछ ने ही उनकी पुस्तकें लेने की स्वीकृति दी।

अंत में उन्होंने बड़े ही उच्च मनोबल दिखाते हुए कहा कि मनुष्य को अपने कर्म पथ से विचलित नहीं होना चाहिए। कोई भी कार्य यदि मनोयोग से किया जाए तो एक-न-एक दिन वह कार्य उसे ऊँचाइयों पर जरूर ले जाता है और उसे आर्थिक लाभ के साथ ही प्रसिद्धि भी दिलाता है। सचमुच संजना जी हिंदी साहित्य की बिक्री के माध्यम से आज 'एस.आर.सी. आंटी' और 'किताब वाली आंटी' के नाम से सबके दिलों में स्थान तो पा ही चुकी हैं।

असहयोग आंदोलन के प्रथम जेलयात्री महर्षि सदाफल देव महाराज

आजादी के 75वें साल को 'अमृत महोत्सव' के रूप में पूरे देश में मनाया जा रहा है। इस संदर्भ में देश की आजादी के लिए अपना अप्रतिम योगदान देने वाले महान क्रांतिकारियों, प्रखर स्वतंत्रता सेनानियों और हुतात्मा बलिदानियों का पुण्य स्मरण करना हमारा परम कर्तव्य बन जाता है। हम सबका यह सौभाग्य है कि आजादी के इस अमृत महोत्सव के हम सब साक्षी बने हैं और इससे हमारी यत्किंचित सहभागिता भी हो रही है। आजादी के इतिहास को अब तक कई लोगों ने लिखा है। मगर इसके कई पक्ष अभी भी अछूते रह गए हैं। देश की आजादी के लिए एक तरफ जहाँ राजनीतिक प्रयास चल रहा था, वहीं दूसरी ओर क्रांतिकारियों का साहसपूर्ण बलिदानी अभियान भी चल रहा था। इसके साथ ही महान संतों का आध्यात्मिक प्रयोग और देश को जगाने का एक संकल्पित आह्वान भी आजादी की आग को प्रज्वलित कर रहा था। इनमें कई ऐसे महान स्वतंत्रता सेनानी थे, जो अब तक इतिहासकारों की दृष्टि में पूर्णरूप से सम्मानित स्थान नहीं पा सके हैं और इतिहास के पृष्ठों पर उन्हें समुचित सम्मान नहीं मिल पाया है। इस अमृत महोत्सव के अवसर पर आजादी के वास्तविक इतिहास को शोधपूर्ण अन्वेषण के बाद तथ्य और कथ्य के साथ प्रस्तुत करने की दिशा में एक सार्थक पहल हुई है और उसी कड़ी में है—स्वतंत्रता के प्रकाश को प्रज्वलित करने वाले स्वामी सदाफल जी महाराज।

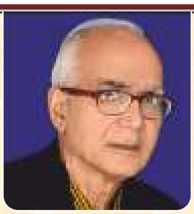

निरंकार सिंह

जन्म : 01 जनवरी, 1952, बाराबंकी (उत्तर प्रदेश)

शिक्षा : विज्ञान स्नातक

संप्रति : नागरी प्रचारणी सभा द्वारा प्रकाशित 'हिंदी विश्वकोश' के सहायक संपादक के रूप में कार्य। साथ ही विभिन्न समाचार पत्रों में सहायक संपादक की भूमिका निभाई। वर्तमान में स्वतंत्र लेखन।

संपर्क : मोबाइल– 9451910615

ई-मेल– nirankarsi@gmail.com

महान संत स्वामी सदाफल देव महाराज बलिया जिले के पकड़ी गाँव में अपनी आध्यात्मिक साधना में लीन थे। इसी बीच ईश्वरीय प्रेरणा से वह अपनी साधना को छोड़कर 10 सितंबर, 1920 को बिहार प्रांत के दानापुर में फौजियों के बीच देश की आजादी के लिए विद्रोह करने के संबंध में अपना ओजस्वी भाषण देने पहुँच गए, जिसके फलस्वरूप उन पर फौज को उकसाने का आरोप लगाकर ब्रिटिश सरकार द्वारा मुकदमा चलाया गया था। इस केस में स्वामीजी को दो वर्ष का सश्रम कारावास का दंड दिया गया था, जिसके फलस्वरूप उनकी जेल यात्रा 22 दिसंबर, 1920 को प्रारंभ हुई थी। उस समय स्वामीजी को लोग 'विज्ञानानंद जी' के नाम से जानते थे। इस तरह वे असहयोग आंदोलन के प्रथम जेल

यात्री बने। स्वामीजी की जेल-यात्रा के बाद ही देश के अन्य बड़े-बड़े नेता सन् 1921 के असहयोग आंदोलन में गिरफ्तार हुए हैं। इस तरह भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के अमर सेनानी महर्षि सदाफलदेव जी महाराज की जेल यात्रा का शताब्दी महोत्सव इस वर्ष स्वर्वेद महामंदिर धाम पर मनाया जा रहा है।

महर्षि सदाफल देव महाराज जेल से सजा काटने के बाद बाहर आने पर पूरी तरह ब्रह्म ज्ञान की साधना में लग गए। विहंगम योग संत समाज के 98वें वार्षिकोत्सव में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने भी यह बात स्वीकार की कि "सैकड़ों साल के इतिहास में हमारे स्वाधीनता संग्राम के कितने ही ऐसे पहलू रहे हैं जिन्होंने देश को एकता के सूत्र में बाँधे रखा। ऐसे ही कितने संत थे जो आध्यात्मिक तप छोड़कर आजादी के लिए जुटे। हमारे स्वाधीनता संग्राम की आध्यात्मिक धारा इतिहास में वैसे दर्ज नहीं हुई जैसे की जानी चाहिए थी। आज जब हम आजादी का अमृत महोत्सव मना रहे हैं, तो इस धारा को सामने लाना हमारा दायित्व है। इसलिए देश की आजादी की लड़ाई में अपने

गुरुओं, संतों, तपस्वियों के योगदान को देश स्मरण कर रहा है। नई पीढ़ी को उसके योगदान से परिचित करा रहा है। मुझे खुशी है कि विहंगम योग संस्थान भी इसमें सक्रिय भूमिका निभा रहा है।"

"महर्षि सदाफल देव जी महाराज अध्यात्म की गंगा के गोमुख बनकर अपने ज्ञान को इस धराधाम पर उतार लाए और धर्म के नाम पर पनपी अंध नीतियों, कुरीतियों, मिथ्या कर्मकांडों की भर्त्सना करते हुए शुद्ध तत्वज्ञान से लोगों को परिचित कराया।"

महर्षि सदाफलदेव महाराज जी की मूल रुचि अध्यात्म और ब्रह्म विद्या जानने की ही थी। वह एक ऐसे ही ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु थे, जिनका अवतरण भाद्रकृष्ण चतुर्थी वि.सं. 1945 को सन् 1888 में उत्तर प्रदेश के बलिया जिला अंतर्गत पकड़ी ग्राम में हुआ था। भाद्रकृष्ण चतुर्थी इस साल 15 अगस्त को थी। उनके पिता का नाम राजर्षि हनुमान जी राय, बाबा स्कम्भ मुनि और माता श्रीमती स्व. मुक्ति देवी है। प्रसिद्ध सेंगर-वंशीय इस ऋषिकुल की उत्पत्ति महर्षि शृंगी से मानी जाती है, जिनके बारे में कहा जाता है कि राजा दशरथ के पुत्रेष्टि यज्ञ को उन्होंने ही करवाया था। महर्षि शृंगी की शादी राजा दशरथ के मित्र अंगदेश के राजा रोमपाद की कन्या से हुई थी। इसी शृंगी ऋषि और शान्ता से उत्पन्न संतति को 'सेंगर-वंश' कहा गया है। महर्षि सदाफलदेव जी महाराज की पूर्व पीढ़ी में भी अनेक त्यागी संत-महात्मा हो चुके हैं। इनमें बाबा लालजी राव का नाम अत्यंत आदर के साथ लिया जाता है। इन्हीं बाबा लालजी राव की छठी पीढ़ी में महर्षि सदाफलदेव जी महाराज का अवतरण हुआ।

वे बचपन से ही साधु प्रवृत्ति के थे और छोटी अवस्था में ही गीता-रामायण का पाठ करने लगे थे। स्वामीजी जब 11 वर्ष के हुए तो उन्हें वेदों को पढ़ने की इच्छा हुई। इसके लिए वे काशी भी गए, पर उस समय के रूढ़िवादी पंडितों ने उन्हें क्षत्रिय-कुल का जानकर वेद पढ़ाने से इनकार कर दिया। उन्हें क्या पता था कि एक दिन यही बालक चारों वेदों का ब्रह्मविद्यापरक भाष्य लिखेगा? स्वामीजी में बचपन से ही वैराग्य-भाव उदित होने लगा था। वे साधु-संतों की खोज में रहने लगे। कई संत-महात्माओं के दर्शन भी किए, मगर तृप्ति नहीं हुई। उन्हें लगता था कि परमात्मा के नाम पर जो भी प्रारंभिक पूजा-पद्धतियाँ समाज में प्रचलित हैं, वे परमात्मा-प्राप्ति के सही मार्ग नहीं हैं। परमात्मा की ओर बढ़ने के ये प्रारंभिक सोपान हो सकते हैं। इसी उधेड़बुन में वे सत्यज्ञान की तलाश में सर्वत्र घूमने लगे। उनकी यह यात्रा तब तक जारी रही जब तक उन्हें पूर्ण सद्गुरु नहीं मिल गए। उन्हें सत्यज्ञान का मार्ग मिल गया। साथ ही, उन्हें यह भी पता चल गया कि वे किस उद्देश्य से कहाँ से आए हैं?

ऐसे महर्षि सदाफलदेव जी महाराज, जिन्हें अपनी पूर्व-मुक्ति का भी ज्ञान था, फिर भी जब योग-साधना में प्रवृत्त हुए तो बहुत से सामान्य अनुभवों की ओर उन्होंने ध्यान नहीं दिया। विशेष अनुभव के रूप में शब्द और प्रकाश की अनुभूति होने पर भी उसे 'मायिक प्रकाश' ही कहा और बराबर आगे के मार्ग की प्राप्ति के लिए अग्रसर होते रहे। वे चाहते तो योग के प्रारंभिक अनुभवों को ही उपलब्धि मानकर अपने मत का प्रचार करने लगते, मगर ऐसा उन्होंने नहीं किया। वे हमेशा परमात्म-ज्ञान की पूर्णता के लिए अग्रसर होते गए। उन्हें यह लगता था कि जो परमात्मा इंद्रियाँ, मन और बुद्धि की पहुँच के परे है, उसे उन्हीं के माध्यम से कैसे जाना जा सकता है? उनकी साधना की यात्रा सतत आगे बढ़ती रही। स्वामीजी प्रभु-प्राप्ति के मार्ग में अनवरत आगे बढ़ते जा रहे थे। इसी क्रम में जब एक संत-विशेष स्वामीजी को मिले हैं, तब उन्हें शांति मिली और उस संत द्वारा बताई साधना को वह वृत्तिकूट आश्रम की पर्णकुटी के नीचे एक गुफा में करने लगे। फिर यहाँ से आश्रम के दक्षिणी भाग स्थित बगीचे में गुफा में योगाभ्यास करने लगे। यहाँ पर जब अधिक लोग आने-जाने लगे तब फिर उस स्थान से वि.सं. 1963, ई.स. 1906 में चले गए, जिसे आज सभी 'वृत्तिकूट गुफा' के नाम से जानते हैं। स्वामीजी की खपरैल गुफा बहुत लोगों ने प्रत्यक्ष देखी है। उसी स्थान पर आज पाँच तल्ला स्मृति-केंद्र बना हुआ है, जिसके निचले भाग में अभी भी उस पुरानी गुफा का स्थान सुरक्षित है।

इस तरह स्वामीजी की साधना जो सन् 1904 के प्रारंभ से शुरू हुई, सन् 1914 तक उस अवस्था को प्राप्त हुई जब स्वयं नित्य अनादि सद्गुरु को वृत्तिकूट आश्रम पर प्रकट होकर उन्हें आध्यात्मिक तत्वों का पूर्ण बोध कराना पड़ा। उन्होंने वृत्तिकूट की गुफा में नियमबद्ध 12 वर्ष तक निवास किया। इसके बाद गंगा के तट पर बलिया जिले में एक स्थान है, वहाँ पर छह मास का अनुष्ठान हुआ था। यह अनुष्ठान प्रारंभिक काल का था। इसके अतिरिक्त उन्होंने बुंदेलखंड में यमुना-बेतवा के संगम पर वन में छह मास का अनुष्ठान किया था। वहाँ आज भी उनके प्रेमी-सत्संगी हैं। पुराने शिष्य तो कालवशात् नहीं रहे। यह समय संवत् 1972 विक्रमी, ई. सन् 1915 का है। ऐसे 17 वर्ष के परिश्रम के पश्चात यह अवस्था उन्हें प्राप्त हुई थी।

महर्षि सदाफल देव जी महाराज अध्यात्म की गंगा के गोमुख बनकर अपने ज्ञान को इस धराधाम पर उतार लाए और धर्म के नाम पर पनपी अंध नीतियों, कुरीतियों, मिथ्या कर्मकांडों की भर्त्सना करते हुए शुद्ध तत्वज्ञान से लोगों को परिचित कराया। अपने जीवन के एक-एक क्षण को उन्होंने मानवता के कल्याण में लगा दिया। प्रयाग के झूँसी की तपोभूमि में आपने माघ शुक्ल नवमी वि.सं. 2010 (सन् 1954) को महाकुंभ के अवसर पर योगासन में बैठकर अपने शरीर का परित्याग कर दिया। स्वामीजी की समाधि झूँसी-धाम पर ही बनी हुई है। आज भी कई भक्त-किशोर उस समाधि पर माथा टेककर आध्यात्मिक ऊर्जा अर्जित करते हैं। यह समाधि देश-विदेश के लाखों अनुयायियों की श्रद्धा का केंद्र है।

नेताजी सुभाष चंद्र बोस का अंडमान आगमन

द्वितीय विश्वयुद्ध के समय जापानियों ने अंडमान तथा निकोबार द्वीपसमूह पर अपना आधिपत्य जमा लिया था। अंग्रेजों के लिए द्वीपों को खाली करने के अलावा और कोई रास्ता नहीं बचा था। कुछ दिनों तक तो जापानियों का द्वीपवासियों के प्रति व्यवहार उनकी छद्म घोषणा के अनुरूप नरम और उदारतापूर्ण रहा, लेकिन बाद में वे अंग्रेजों के अचानक हवाई हमलों से बौखला उठे। उन्हें लगा कि स्थानीय निवासियों द्वारा उनके विरुद्ध जासूसी की जा रही है तथा गुप्त सूचनाएँ अंग्रेजों तक पहुँचाई जा रही हैं। फिर क्या, उन्होंने क्रूरता, नृशंसता, आतंक और हत्या का जो तांडव किया, वह अंग्रेजों की अमानवीयता और कठोरता से भी कहीं अधिक भयावह और त्रासद था।

NETAJI'S VISIT TO CELLULAR JAIL ON 30th DECEMBER 1943

डॉ. व्यास मणि त्रिपाठी

जन्म : 01 अक्तूबर, 1959, कुशीनगर, उत्तर प्रदेश।

शिक्षा : हिंदी में एम.ए., पी-एच.डी.।

संप्रति : अध्यक्ष, हिंदी विभाग, जवाहरलाल नेहरू राजकीय महाविद्यालय, पोर्टब्लेयर, अंडमान।

प्रकाशन : कविता, कहानी, आलोचना, लोककथा आदि पर 30 पुस्तकें प्रकाशित। इनके अलावा 32 पुस्तकों में सहलेखन।

सम्मान : विश्व हिंदी सम्मान, मध्य प्रदेश साहित्य अकादमी का 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल आलोचना' पुरस्कार। उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान का 'रामविलास शर्मा सर्जना पुरस्कार', विद्या वाचस्पति और विद्या वारिधि की मानद उपाधियों सहित अन्य दर्जनों पुरस्कार एवं सम्मान प्राप्त।

संपर्क : मोबाइल– 9434286189
ईमेल– tripathivyasmani@gmail.com

नेताजी सुभाष चंद्र बोस दूरद्रष्टा थे। उन्हें लगता था कि भारत की आज़ादी का रास्ता अंडमान तथा निकोबार द्वीपसमूह से होकर जाता है। इसीलिए वे सर्वप्रथम इन द्वीपों की मुक्ति चाहते थे। दक्षिण-पूर्व एशिया में आज़ाद हिंद सरकार और आज़ाद हिंद फौज की स्थापना से वे भारत की आज़ादी का जो मार्ग प्रशस्त कर रहे थे, उससे उनकी दूरदर्शिता तथा दृढ़ता की ख्याति विश्व मंच पर बढ़ती जा रही थी। लोग उनसे जुड़ते जा रहे थे। सहयोग और साधन उपलब्ध कराने में भी लोग आगे आ रहे थे। जापान के टोक्यो में नवंबर सन् 1943 में आयोजित 'वृहत्तर एशिया सह समृद्धि क्षेत्र सम्मेलन' में नेताजी सुभाष चंद्र बोस ने जो सारगर्भित और ओजस्वी भाषण दिया, उसका जादू वहाँ उपस्थित सभी प्रतिनिधियों के सिर चढ़कर बोल रहा था। मंत्रमुग्ध कर देने वाले नेताजी के उस भाषण ने उनकी प्रतिष्ठा में और भी श्रीवृद्धि कर दी थी। उनके चिंतनशील, कर्मनिष्ठ और दृढ़प्रतिज्ञ व्यक्तित्व का प्रभाव जापान के सम्राट और वहाँ के जनमानस पर भी पड़ा था। तभी तो सम्मेलन के संपन्न होते ही नेताजी ने जापानी शासन से कुछ महत्वपूर्ण प्रश्नों के समाधान का प्रयास किया, जिनमें अंडमान तथा निकोबार द्वीपसमूह को आज़ाद हिंद सरकार को सौंपने का मामला मुख्य था। उन्होंने जापानियों के समक्ष विचार-विमर्श के दौरान यह तर्क दिया कि ये द्वीपसमूह भारतीय स्वाधीनता-संग्राम से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं। प्रथम स्वतंत्रता-संग्राम के नायकों का मनोबल तोड़ने के लिए अंग्रेजों ने उन्हें 'कालापानी'

की सजा देकर अंडमान भेजा था। उसके बाद भी यह सिलसिला रुका नहीं। हजारों देशभक्तों ने अपने देश की आज़ादी के लिए 'कालापानी' की घोर अमानवीय यातनाएँ सही हैं। इन पंक्तियों के लेखक ने उस अमानवीय यातना को अपनी एक कविता में इस प्रकार रूपायित किया है—

"बैलों की जगह कोल्हू में
वे क्रांतिवीर सब जुतते थे,
थकने अथवा रुक जाने पर
हंटर कोड़ों से पिटते थे॥
छाले पैरों में हाथों से
टप-टप-टप लहू टपकता था,
कमनीय तन चट्टान हृदय
बस वंदेमातरम् कहता था॥

टाट ओढ़ना, टाट बिछाना
पहनावा टाट हुआ करता,
बात-बात में गाली-डंडा
पिन सेनाखून छिदा करता॥
दाल-भात में कंकड़, कीड़े,
पानी मग एक मिला करता,
बहुत यातना कष्ट बहुत पर
मन थोड़ा भी न डिगा करता॥"

(कालापानी संज्ञा मुझको खलती है, पृष्ठ संख्या-10)

अंडमान तथा निकोबार द्वीपसमूह को आज़ाद हिंद सरकार के अधीन सौंपने का प्रस्ताव देते समय नेताजी के मनमस्तिष्क में अंग्रेजों द्वारा दी गई उपर्युक्त यातनाएँ अवश्य कौंध रही थीं। उनके चिंतन में द्वीपवासियों पर जापानियों के अत्याचारों की पीड़ा भी शामिल थी। प्रारंभ में जापानी सरकार ने नेताजी के प्रस्ताव के प्रति अपनी सकारात्मकता नहीं दिखाई, किंतु उनके बहुत समझाने पर जापानी प्रधानमंत्री तोजो ने यह घोषणा की कि जापान भारत के स्वतंत्रता-संग्राम में सहायता की अपनी वचनबद्धता की अनुपालना में अंडमान तथा निकोबार द्वीपसमूह का प्रशासन आज़ाद हिंद सरकार को सौंपने का इच्छुक है। यह बात अलग है कि वास्तविक हस्तांतरण की औपचारिकता सांकेतिक ही रही। समझौते के अनुसार, द्वीपसमूह की नागरिक व्यवस्था, शिक्षा, कृषि आदि आज़ाद हिंद सरकार के पास तथा वैदेशिक मामले एवं सुरक्षा जापान के पास रहना था। आज़ाद हिंद सरकार के पास नौसेना नहीं थी, इसलिए विदेशी मामलों को जापानियों ने अपने पास रखा था। नेताजी ने आगामी दिसंबर महीने की अंडमान यात्रा के समय आज़ाद हिंद फौज के कुछ सैनिकों को भी साथ लाने की योजना बनाई थी, किंतु जापानियों ने आवागमन के साधनों की कमी का बहाना बनाकर उनकी इस योजना को क्रियान्वित नहीं होने दिया। नेताजी सुभाष चंद्र बोस 29 दिसंबर, 1943 को अपने साथी आनंद मोहन सहाय, ए.डी.सी. कैप्टन रावत तथा अपने निजी चिकित्सक कर्नल डी.एस. राजू के साथ अंडमान आए थे। पोर्टब्लेयर स्थित लंबालाइन के हवाई अड्डे पर द्वीपों के तत्कालीन सर्वोच्च अधिकारी एडमिरल ईशिकावा ने उनका स्वागत किया था। वहाँ उपस्थित सैन्य टुकड़ी के निरीक्षण और सलामी के बाद नेताजी को तत्कालीन मुख्यालय रॉस द्वीप ले जाया गया। रास्ते में लंबालाइन से अबरडीन जेट्टी तक हजारों नर-नारी, आबाल-वृद्ध नेताजी के दर्शनार्थ कतारों में खड़े थे, किंतु इस रास्ते पर जापानी सैनिकों की निगरानी बहुत कड़ी थी।

उन्हें यह भय सता रहा था कि सूचीबद्ध नागरिकों के अलावा और कोई भी द्वीपवासी नेताजी से मिलकर उनकी प्रताड़ना की व्यथा कथा न सुना दे। इसीलिए वे नेताजी को मजबूत सुरक्षा घेरे में रखे हुए थे। व्यवस्था की बात चाहे जो भी रही हो, नेताजी के आने की सूचना मात्र से द्वीपवासियों के मन में अपार उत्साह था। यहाँ का जन-जन उनके स्वागत के लिए पल-पल प्रतीक्षारत था।

यहाँ यह स्मरणीय है कि नेताजी के द्वीपों में पधारने से पहले यहाँ आज़ाद हिंद फौज की शाखा खुल चुकी थी। डॉ. दीवान सिंह गुरुद्वारा के बगल में रामनाथ नाग के भवन में आई.एन.ए. का कार्यालय था। नेताजी के सहयोगी कर्नल लोकनाथन, कर्नल अल्वी लेफ्टिनेंट इकबाल अहमद ने यहाँ के नौजवानों को आई.एन.ए. में भर्ती होने के लिए प्रेरित किया था। 15 जवानों की टोली बनाकर उन्हें बकायदा सैन्य प्रशिक्षण दिया गया था। नेताजी के आगमन पर टुस्नाबाद गाँव के निवासी भगवान प्रसाद ने अपनी भावनाओं को इन काव्य-पंक्तियों के माध्यम से प्रकट किया था—

"वाणी नहीं जो समझ लो इतनी, करें बखान खुशी का आज।
जैसे गूँगा फल को खाकर, नहीं बता सकता कुछ राज॥
जननी-जन्मभूमि के तारे, आए हो तुम बीच हमारे।
टूटे-फूटे वचन सुनाकर, स्वागत करते हैं हम सारे॥"

(ज़िंदगी अख़बार होकर रह गई, अंक-16, पृष्ठ संख्या-4)

अंडमान आगमन के दूसरे दिन यानी 30 दिसंबर, 1943 को नेताजी का सेलुलर जेल जाकर वहाँ के कैदियों से मिलने का कार्यक्रम था, किंतु जापानियों ने जेल के कुछ चुनिंदा कैदियों से ही मुलाकात करवाई। उन्हें पूरी जेल भी नहीं दिखाई। वे जेल के उन्हीं भागों में उनको ले गए, जहाँ कैदी जापानी शासन के विरुद्ध मुँह नहीं खोल सकते थे। नेताजी सुभाष चंद्र बोस ने इंडियन इंडिपेंडेंस लीग के स्थानीय अध्यक्ष डॉ. दीवान सिंह से मिलने की इच्छा प्रकट की, किंतु वे जापानी जेल के उस भाग की ओर उन्हें नहीं ले गए जहाँ डॉ. दीवान सिंह को कठोर यातना में रखा गया था। यहाँ यह बताते चलें कि जापानियों ने डॉ. दीवान सिंह को जासूसी के झूठे आरोप में सेलुलर जेल में बंद कर रखा था। जहाँ 14 जनवरी, 1944 को उनकी मृत्यु हो गई थी। जापानियों ने अंग्रेजों का जासूस होने के संदेह में कई सौ द्वीपवासियों को जबरदस्ती नाव पर बिठाकर हैवलॉक के पास के समुद्र में फेंक उन पर बोट चला दी थी। 30 जनवरी, 1944 को हम्फ्रीगंज में 44 लोगों को एक कतार में खड़ा कर गोलियों से भून डाला था। इस तरह जापानी शासन अंग्रेजों के कुशासन से भी अधिक भयावह था।

भारतीय स्वाधीनता संग्राम के इतिहास में 30 दिसंबर, 1943 का दिन इस दृष्टि से विशेष है कि आज़ाद हिंद फौज के सर्वोच्च कमांडर नेताजी सुभाष चंद्र बोस ने यहाँ के ऐतिहासिक जिमखाना मैदान में अंडमानवासियों की उपस्थिति में तिरंगा झंडा फहराया था। अंग्रेजों के आधिपत्य से विमुक्त भारतीय धरती पर फहराया गया यह पहला

तिरंगा झंडा था। तत्कालीन आठ हजार की आबादी में से लगभग तीन हजार लोग नेताजी को देखने-सुनने जिमखाना मैदान पहुँचे थे। चूँकि, वह द्वितीय विश्वयुद्ध का समय था इसलिए नेताजी के आगमन को बहुत प्रचारित नहीं किया गया था। फिर भी इतनी बड़ी संख्या में लोगों का जमावड़ा नेताजी के आकर्षक व्यक्तित्व एवं आज़ादी के प्रति संकल्पित मनीषी की संघर्षशीलता के प्रति एक तरह का कृतज्ञता-ज्ञापन था। जिमखाना मैदान, जिसे आज नेताजी स्टेडियम के नाम से जाना जाता है, में उमड़े जनसमूह के बीच यहाँ की युवा

टोली ने आज़ाद हिंद फौज का राष्ट्रगान 'शुभ सुख-चैन की बरखा बरसे, भारत भाग है जागा' तथा 'कदम-कदम बढ़ाए जा' का गायन किया था। इंडियन इंडिपेंडेंस लीग की स्थानीय शाखा के अध्यक्ष रामकृष्णा ने नेताजी के सम्मान में अभिनंदन पत्र पढ़ा था और लोगों से एकत्र की गई दस हजार रुपये की धनराशि भेंट की थी।

तिरंगा झंडा फहराने के बाद नेताजी ने जो ऐतिहासिक भाषण दिया था, वह द्वीपसमूह के साथ-साथ पूरे देश को गौरवान्वित करने वाला था। उन्होंने अपने संबोधन में भारतीय स्वतंत्रता के इतिहास की भूमिका पर प्रकाश डालते हुए आज़ाद हिंद सरकार की स्थापना के उद्देश्यों की जानकारी दी थी। उनका भाषण बहुत ही ओजस्वी और प्रभावी था, जिसका उल्लेख मास्टर के. सरदास (उस युवा टोली के सदस्य थे, जिसने नेताजी के सम्मान में गीत प्रस्तुत किया था) ने आकाशवाणी केंद्र पोर्टब्लेयर के वरिष्ठ उद्घोषक मदन मोहन सिंह को दिए एक साक्षात्कार में किया था—"उनकी (नेताजी) यह अपील थी कि देखिए भाई! हम जो यहाँ आए हैं, दक्षिण-पूर्व एशिया में और हम बिलकुल खाली हाथ हैं। सब-कुछ जापानियों पर निर्भर करते हैं और खुशी है हमें कम-से-कम अपना राज स्थापित करने के लिए यहाँ पर धरती होना है, बैंक होना है, सेना होना है, अपना कैबिनेट होना है, तब जाकर सब पूरा होता है। शुक्र है कि जापानी सरकार ने अंडमान-निकोबार को हमें सौंपा।" (*ज़िंदगी अख़बार होकर रह गई, अंक-16, पृष्ठ-27*)

नेताजी ने अपने इसी संबोधन में अंडमान का नामकरण 'शहीद द्वीप' तथा निकोबार का नामकरण 'स्वराज द्वीप' किया था—"भारतीयों के लिए अंडमान का लौटाया जाना ब्रिटिश पाश से मुक्त होने वाला प्रथम भूभाग है। यहाँ अधिकांश राजनैतिक बंदी वे हैं, जिन्हें ब्रिटिश सरकार को उलट देने संबंधी षड्यंत्रों में कठोर कारावास मिला है—पेरिस (फ्रांस की राजधानी) के बेस्टील जेल की तरह, जो फ्रांस की राज्यक्रांति के समय सर्वप्रथम मुक्त हुआ और उसके सभी राजबंदी मुक्त कर दिए गए थे। उसी प्रकार अंडमान भी, जहाँ हमारे देशभक्तों ने यातनाएँ सही हैं, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के समय मुक्त होने में प्रथम है। भारतीय भूभाग मुक्त होगा, लेकिन इस (अंडमान) जमीन के टुकड़े का सबसे अधिक महत्व है...आज हम शहीदों की स्मृति में अंडमान का नाम 'शहीद' और निकोबार का नाम 'स्वराज' रख रहे हैं।" (*मुक्ति-तीर्थ अंडमान, द्वितीय आवृत्ति, 1982, पृष्ठ-68*)

जिमखाना मैदान में आयोजित जनसभा में नेताजी का भाषण हुआ, लेकिन वे आम जनता से मिल नहीं सके, इसलिए इंडियन इंडिपेंडेंस लीग की अंडमान शाखा के एक सदस्य ने उनसे लीग के कार्यालय आकर कार्यकारिणी के सदस्यों से मिलने का आग्रह किया, जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। यद्यपि जापानी नहीं चाहते थे कि नेताजी आम जनता से मिलें, क्योंकि इससे उनके द्वारा की जा रही क्रूरताओं और निर्ममताओं के रहस्योद्घाटन का अंदेशा था। फिर भी नेताजी ब्राउनिंग क्लब में आयोजित उस सभा में गए। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि यह क्लब लोकल बॉर्न एसोसिएशन द्वारा सन् 1932 में बनाया गया था। नेताजी के आगमन की बात सुनकर इस क्लब में काफी भीड़ इकट्ठा हो गई थी, लेकिन समय की कमी के कारण किसी को भी आपबीती सुनाने का अवसर नहीं मिला। लोगों ने आनन-फानन में पाँच हजार का चंदा इकट्ठा कर लिया था, जिसे नेताजी को सहर्ष भेंट किया गया। लोकल बॉर्न एसोसिएशन के सदस्यों ने यह सोचा कि जिस व्यक्ति ने देश को अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया, उसे हम क्या दें? इसी सोच-विचार में उन्होंने यह निर्णय लिया कि ब्राउनिंग क्लब का नाम बदलकर 'नेताजी हॉल' कर दिया जाए। तभी से यह क्लब 'नेताजी हॉल' के नाम से जाना जाता है। नेताजी 31 दिसंबर, 1943 को अंडमान से विदा हुए। वह अपनी ओजस्वी वाणी और प्रखर व्यक्तित्व की छाप हर द्वीपवासी के मनमस्तिष्क पर छोड़ गए। नेताजी सुभाष चंद्र बोस के साहस, शौर्य और बलिदान की याद में यहाँ 'सुभाष ग्राम' की स्थापना हुई है, जहाँ प्रति वर्ष 23 जनवरी को उनके जन्मदिन के अवसर पर 'सुभाष मेले' का आयोजन किया जाता है। पोर्टब्लेयर स्थित मेरिना पार्क में 'दिल्ली चलो' की मुद्रा वाली उनकी एक भव्य प्रतिमा स्थापित है। 30 दिसंबर, 1943 को नेताजी द्वारा द्वीपों में सर्वप्रथम तिरंगा फहराए जाने की याद में प्रशासन की ओर से भव्य कार्यक्रम का आयोजन कर उन्हें श्रद्धा सुमन अर्पित किया जाता है। इस तरह नेताजी अपने देश हित के अवदान के कारण सभी के हृदय में निवास करते हैं।

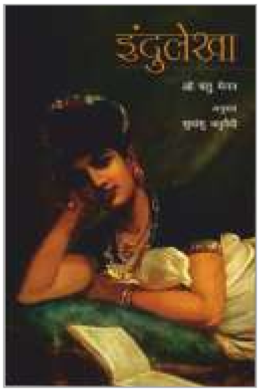

समीक्षक : **फूलचंद मानव**

लेखक : **ओ. चंतु. मेनन**

अनुवाद : **सुधांशु चतुर्वेदी**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 302

मूल्य : रु. 380/-

इंदुलेखा

उपन्यास संसार में ही नहीं, भारत में भी चाव से पढ़ा और सराहा जाता रहा है। लोकप्रिय उपन्यास, साहित्यिक उपन्यास अथवा पाठ्यक्रमों के लिए निर्धारित उपन्यासों की तरह इसका वर्गीकरण सामाजिक, राजनैतिक, वैज्ञानिक, सांस्कृतिक उपन्यासों में भी किया जाता रहा है। मूलतः उपन्यास के केंद्र में कथानक इसलिए रहता है क्योंकि उसमें रोचकता, जिज्ञासा और वैचारिकता बनी रहती है। आधुनिक या अति आधुनिक समाज में आज लेखकों ने नई-नई शैलियाँ पैदा करके उपन्यास का तथाकथित विकास भी दिखाया है। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में हम जान पाते हैं कि विश्व के बड़े-बड़े उपन्यासकारों को हम उनके लिखे उपन्यासों के माध्यम से ही स्मरण कर रहे हैं। माँ, गोदान, शेखर एक जीवनी, चित्रलेखा जैसे सैकड़ों उपन्यास भारतीय और पाश्चात्य उपन्यासों में शुमार हैं, जिनको पढ़ते हुए लेखकों की सराहना ही नहीं हुई, बल्कि उनके साहित्य स्तर की परख-पहचान भी की गई है। 'इंदुलेखा' एक मलयालम दस्तावेजी उपन्यास है, जिसमें मलयालम साहित्य के आरंभिक दिनों की कथा-गाथा को तत्कालीन स्थितियों में चित्रित करते हुए दिखाया गया है।

'इंदुलेखा' उपन्यास की भूमिका में के. अय्यप्पा पाणिक्कर ने जो स्पष्ट किया है, वह पर्याप्त है। ओ.चंतु. मेनन का समय और समाज उपन्यास में परिलक्षित हो रहा है। मूलतः मलयालम में यह उपन्यास सन् 1889 में प्रकाशित हुआ और लगभग सवा सौ साल बाद भी इस उपन्यास के माध्यम से हम केरल की संस्कृति, संस्कार, वहाँ के चरित्र और उनकी भूमिकाओं का पाठ कर पा रहे हैं। लड़कियों को शिक्षा देना, विदेशों में शिक्षा देना, अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा देना एक स्तर तक तब भी उल्लेखनीय और महत्वपूर्ण कार्य था, जबकि रूढ़िगत, संस्कारशील समाज में इसे अधिक सराहा नहीं जा रहा था। शिक्षा व्यक्ति के बौद्धिक विकास के साथ उसको मजबूत करते हुए मानसिक मनोबल प्रदान करती है। इंदुलेखा के 19 अध्यायों में कहानी को मोड़-तोड़ देते हुए, नाटकीय शैली में उपन्यास विधा को चरितार्थ करने का यत्न यहाँ दिखाई दे रहा है। एक विद्रोह, एक आफत, एक वार्तालाप, मद्रास से आगमन जैसे अलग-अलग अध्याय जो कह रहे हैं, वहाँ नर-नारी पात्रों का संपर्क, संवाद और टकराहट उजागर हो रही है। माधवन के देशाटन के समय खानदान में घटित घटनाएँ, मद्रास से एक चिट्ठी, ओ.चंतु. मेनन की कुंठा, उसका क्रोध या नंपूतिरिप्पाटु की शादी सरीखे अध्याय यहाँ उतार-चढ़ाव को बता रहे हैं।

इंदुलेखा में धर्म, समाज, मंदिर, ईश्वर और तर्क के अतिरिक्त सूक्ष्मकला, संगीत, नाटक, रंगमंच को भी स्थान दिया गया है। लंपट और बज्र मूर्ख पात्र यहाँ खोजे जा सकते हैं। सौम्य और संभ्रांत महिला इंदुमती का चरित्र चित्रण बखूबी उभरकर सामने आया है। उपन्यास एक तरह से नायिका की पृष्ठभूमि, उसकी शिक्षा-दीक्षा, पारिवारिक भूमिका ही नहीं दिखाता, अपितु इंदुमती का साहस, उसकी बुद्धिमत्ता और तर्क को भी उभारकर सामने ला रहा है। देश के अलग-अलग प्रांतों में वहाँ की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि बिखरी और निखरी पड़ी है। इस नाटक के माध्यम से केरल के भूभाग को सौंदर्य और निखार के साथ यथार्थ पृष्ठभूमि पर प्रस्तुत करने का साहस किया गया है। यही समय था जब पाश्चात्य भाषाओं के उपन्यासों के रूपांतरण या अनुवाद अंग्रेजी, मलयालम या हिंदी में आ रहे थे।

किसी भी भाषा के विकास में तत्कालीन समाज के मूल ग्रंथ या उनका अनुवाद हमें जो बता पाते हैं, उसी के आधार पर दूसरे, तीसरे प्रांतों के लोग या विदेशी पाठक अपना ज्ञान साहित्यिक कृतियों के माध्यम से ले लिया करते हैं। इंदुलेखा में सामाजिक व्यवस्था और तत्कालीन नायर परिवार की स्त्रियों का जीवनस्तर रेखांकित हो रहा है। उन दिनों लड़कियों को अपने भविष्य का निर्णय करने की स्वतंत्रता नहीं थी। शिक्षा के माध्यम से वे निडर हो जाती थीं और आत्मनिर्भर कहलाती थीं। इसी कारण इंदुलेखा अपने भविष्य के लिए निर्णय लेने में सक्षम है। वह अपनी शिक्षा के कारण ही किसी भावी पति का विरोध कर पाती है और अपना स्थान भी मुखर होकर दिखा जाती है। वह माधवन और नंपूतिरिप्पाटू के बीच चयन के लिए स्वतंत्र है। यहाँ संघर्ष, कशमकश, साहस, दृढ़ निश्चय ही नहीं, शिक्षा भी नारी समाज के पक्ष में खड़ी हो रही है। इंदुलेखा उपन्यास में नर-नारी पाश अलग-अलग स्तर पर आर्थिकता, सामाजिकता, धर्म और ढोंग को व्यंजित कर रहे हैं, लेकिन इंदुलेखा ने अपनी जीवनशैली में एक सहज शालीनता को अपनाकर नारी का समाज में स्थान स्थिर किया है।

सुधांशु चतुर्वेदी सिद्धहस्त अनुवादक माने जाते हैं। अंग्रेजी, हिंदी व मलयालम में इनका अधिकार है। अनुवाद में शिल्प, शैली, मुहावरा और भाषा की दृष्टि से इन्होंने मिली-जुली भाषा का सहारा लेकर अनुवाद कार्य को संपन्न किया है। तत्सम और तद्भव शब्दावली में आए हुए फिकरे और शब्द कहीं-कहीं मनोरंजक भी जान पड़ते हैं। यह उपन्यास एक पठनीय और सराहनीय पुस्तक के रूप में स्मरण किया जाएगा।

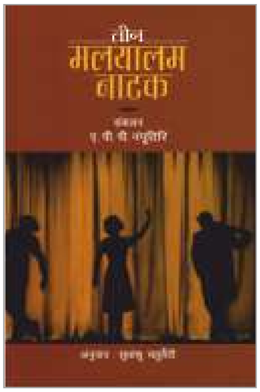

समीक्षक : **फूलचंद मानव**

संकलन : **ए.पी.पी. नंपूतिरि**

अनुवाद : **सुधांशु चतुर्वेदी**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 168

मूल्य : रु. 235/-

तीन मलयालम नाटक

वैश्विक स्तर पर और भारतीय दृष्टि से साहित्य की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा नाटक है। लिखा, छपा हुआ पढ़ना या रंगमंच पर इसे देखना मनोरंजन ही नहीं, एक ज्ञानोत्पादक प्रक्रिया है। दक्षिण भारतीय या उत्तरी भारत की भाषाओं के नाटक, पाठकों तक मूल स्रोत भाषा में या लक्ष्य भाषा में पहुँचते रहे हैं। पाठ्यक्रम का हिस्सा बने छात्रों, पाठकों के लिए उपयोगी रहते हैं। नाटक की पकड़ और पहुँच दूर तक अधिकाधिक दर्शकों को प्रेरित, प्रोत्साहित करके आनंद की अनुभूति देने में सफल कहलाती है। बंगाली, मराठी या पंजाबी नाटकों की तरह मलयालम भाषा के नाटकों का भी अपना इतिहास है। इसकी अपनी पीढ़ियाँ हैं। इन मलयालम नाटकों का संकलन ए.पी.पी. नंपूतिरि ने और अनुवाद सुधांशु चतुर्वेदी ने किया है। प्रो. ए.पी.पी. नंपूतिरि ने अपनी भूमिका में मलयालम नाटकों का विकास, प्रभाव और वर्तमान परिदृश्य भी प्रस्तुत किया है।

जैसा कि विदित है, भारतीय भाषाओं में पहले पाश्चात्य नाटककारों की कृतियों के अनुवाद या रूपांतर हमारे सामने आए थे। उनसे प्रभावित, प्रेरित होकर, भारतीय नाटककारों ने एकांकी, नाटक लिखने शुरू किए। बाद में रंगमंच पर इनकी प्रस्तुति दर्शकों के सम्मुख आने लगी। 'कन्यका', 'वह फिर आ रहा है' और 'यह भूमि है', तीनों नाटकों का अनुवाद एक स्तर पर मलयाली समाज, उसकी शिक्षा, संस्कृति और आर्थिक स्तर की गाथा प्रस्तुत करता है। इनके लेखकों में क्रमशः एन. कृष्ण पिल्लै, सी.जे. तोमस और के.टी. मोहम्मद हैं, वे प्रस्तुत नाटकों में जाति, संप्रदाय, विपन्नता, संपन्नता की ही बात नहीं करते, मलयालम संस्कृति और सभ्यता का आइना भी दिखा रहे हैं। आदर्शवादी, रहस्यवादी नाटकों से आगे आज यथार्थपरक भूमिका में समाज और चरित्रों को दिखाया जा रहा है। भावनाएँ, सहृदयता, संवेदनाएँ इन नाटकों के मूल में हैं, जहाँ नारी या नर पात्र समाज का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं।

'कन्यका' के माध्यम से नाटककार ने चिंतन के स्तर पर जिस समस्या को उभारा है, उसे सही ढंग से निभाया भी है। नाटककार एन.कृष्ण पिल्लै एक प्रतिनिधि रचनाकार के नाते संकलन में चार अंकों के नाटकों के द्वारा निर्वाह करते दिखते हैं। यथार्थ बोध के साथ समस्या का गौरवपूर्ण सूक्ष्म विवेचन यहाँ मिल रहा है। पारिवारिक संपन्नता में देवकी कुट्टी, बड़ी उम्र तक अविवाहित रहकर महसूस करती है कि नारी की पूर्णता पत्नीत्व और मातृत्व में ही है। स्त्री की जीवंतता का बोध नाटक में नायिका की छोटी विवाहित बहन एक पत्र के माध्यम से करवा रही है और यह सब परिस्थितिजन्य है। बड़े पद पर तरक्की पाकर भी देवकी त्यागपत्र देने को विवश होती हुई, अनुभव करती और अपने चपरासी को पति रूप में चुनकर, चुनौती का सामना कर रही है। 'कन्यका' नाटक के नर या नारी आठ पात्रों में भाई, बहन, माँ, पिता, नौकरानी, भारती का पति और बेलू पिल्लै आदि हैं, जो अपनी-अपनी भूमिका, चरित्र को संघर्ष सहयोग के साथ चरितार्थ करने में सफल हैं। यहाँ नाटककार ने मानसिक संघर्ष को माध्यम बनाया है। रचना में एकाग्रता है तो भावुकता के स्तर पर स्थिति का स्पष्टीकरण बताया गया है।

इस पुस्तक में सी.जे. तोमस और के.की. मोहम्मद के दो और नाटकों को सुधांशु चतुर्वेदी ने अनूदित करके हिंदी पाठकों को सौंपा है। नाटक 'वह फिर आ रहा है' और 'यह भूमि है', भिन्न-भिन्न पृष्ठभूमि की रचनाएँ हैं। सहज स्वाभाविक नाट्यक्रम दर्शकों के अनुकूल बैठता है कि पाठक को ग्राह्य सिद्ध हो रहा है। भावुकता के आधार पर 'वह फिर आ रहा है' नाटक में उल्लेखनीय है कि 'काम वासना मात्र मंगलसूत्र से ही बाँध दी सकने वाली नहीं है' यहाँ दंपतियों के वियोग प्रश्न को भी उभारा गया है। दैहिक भूख की मर्यादा का स्वर और स्तर कहीं उभरता है। पति दूर, विदेश में कई साल तक नवविवाहिता से ओझल रहे तो 'वीणा के तार हाथ से ढकने पर भी झंकृत होते हैं।' सी.जे. तोमस यहाँ पारिवारिक, सामाजिक बंधनों, मर्यादाओं का अंकन अपने रचना-मूल्यों द्वारा दिखला रहे हैं। सैनिक वीर पति के रूप में अपनी पत्नी को सुहागरात से पूर्व ही देश छोड़कर चला गया। चार साल बाद लौटता है कि उसकी पत्नी एक बच्चे की माँ बन चुकी होती है। नारी मानसिकता और नवविवाहिता का वियोग उसकी 'कामना' का प्रतिफल है। 'वह फिर आ रहा है' नाटक में सी.जे. तोमस नाटकीयता प्रदर्शित करके कथानक में संत्रास, आतंक उपजा रहे हैं।

तीसरा और अंतिम नाटक 'यह भूमि है' के.टी. मोहम्मद की रचना है, जहाँ सामाजिकता प्रतीकात्मक रूप में उजागर हुई है। प्रत्येक समाज में रूढ़ि संस्कार बनते, मिलते, बिखरते हैं। मुस्लिम समाज पर यहाँ हस्तक्षेप किया गया है। 'मनुष्य बुरा है तो उपवासों और नमाजों से कोई लाभ नहीं।' प्रहसन की स्थिति यहाँ रिहर्सल जैसी बताई गई है। आँख खोलती स्थिति, 'यह भूमि है' नाटक को सफल सार्थक बनाती जान पड़ती है। मलयालम के इन तीनों नाटकों का सुधांशु चतुर्वेदी ने हिंदी अनुवाद वफादारी से किया है। पढ़ते समय इनमें मौलिकता झलकती है।

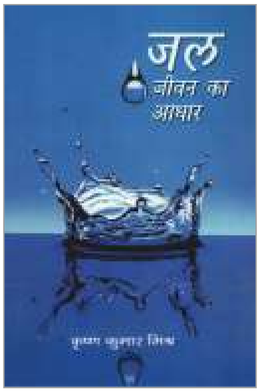

जल : जीवन का आधार

समीक्षक : **डॉ. पंकजा सोनवलकर**

लेखक : **डॉ. कृष्ण कुमार मिश्र**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 106

मूल्य : रु. 165/-

'जल : जीवन का आधार' बहुत ही साधारण-सी दिखाई देने वाली पुस्तक है, किंतु यह साधारण-सी कृति अपनी सरल, स्पष्ट एवं सहज भाषा-शैली द्वारा पानी जैसे आम विषय के विभिन्न आयामों को अद्भुत विस्तार देकर असाधारण हो गई है। 12 अध्यायों को समेटे यह पुस्तक पानी की अतिविशिष्ट विशेषताओं का बखूबी रोचक और ज्ञानवर्धक विवरण प्रस्तुत करती है।

पुस्तक की विषयवस्तु मन में कौंधने वाले कई प्रश्नों के समाधान बहुत सुगमता से देती है। सृष्टि का महत्वपूर्ण नियामक जल है और जल एक प्राकृतिक शक्ति है, इस तथ्य को लेखक ने 'हाइड्रोजन बंध यानी पर्दे के पीछे के कारीगर' शीर्षक द्वारा बहुत रोचक प्रकार से लिखा है।

क्या पानी सचमुच रंगहीन है?, पॉली वाटर : सच्चाई या शगूफा?, बर्फ एक खनिज भी है, नवजात शिशु की पहली साँस यानी हाइड्रोजन बंधों के खिलाफ जद्दोजहद जैसे विषय बहुत ही आकर्षित करते हैं।

सबसे जाना-पहचाना सबसे आम द्रव्य पानी के गुणों को 'लचीले बंध बनाम लचीले कायदे-कानून' और 'मेंडलीव महोदय! हमें आपके आवर्ती नियम-कायदों की परवाह नहीं है', जैसे जिज्ञासा बढ़ाने वाले शीर्षक पुस्तक की विषयवस्तु को अप्रतिम स्वरूप देते हैं।

पुस्तक पानी के आश्चर्यजनक भौतिक, रासायनिक और जैवरासायनिक गुणों को (आवश्यकतानुसार बहुत ही खूबसूरती से वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली का अनुप्रयोग करते हुए भी) अत्यंत सरल शब्दों में समझ विकसित करती है।

यह पुस्तक पौधों में जड़ से शिखर तक की पानी की यात्रा, जल के विलयन के रसायन जैसे अनेक अनछुए पहलुओं को बहुत साधारण भाषा-शैली में प्रस्तुत करती है।

पानी, इसके रूपों की विविध ज्यामितीय संरचनाएँ, इनसे जुड़े जैवविविधतापूर्ण रहस्यों को आमजन को समझाना लेखक की अप्रतिम विशेषता का परिचायक है। अद्भुत लेखन विशेषता के माध्यम से लेखक पाठकों को पानी के आश्चर्यजनक गुणों की ज्ञान सरिता में बहा ले गए हैं और पूर्ण ब्रह्मांड की सैर करवाई है तथा लेखक ने बहरूपिया पानी के विविधतापूर्ण गुण, शक्तियों के वैज्ञानिक संप्रत्ययों को बहुत आसानी से अवबोध स्तर तक स्थापित कर पाठकों में निश्चित ही वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करने का भरपूर प्रयास किया है।

पुस्तक में पाठकों की मानसिक आवश्यकतानुसार चित्र देकर विषयवस्तु और इसकी संकल्पना को सार्थक विस्तार दिया गया है। विज्ञान के तथ्यों एवं तर्कों को लेखक ने विशुद्ध और सरल हिंदी भाषा द्वारा बहुत ही रोचक बनाया है। हिंदी में लिखी होने के कारण इस पुस्तक के तमाम पाठक हिंदी भाषी हैं और होंगे।

यह पुस्तक पाठकों को विज्ञान विषय के गूढ़ संदर्भों को आसानी से समझने के अवसर देती है। वस्तुतः पुस्तक पठनीय एवं संग्रहणीय है।

मिश्री मौसी का मटका

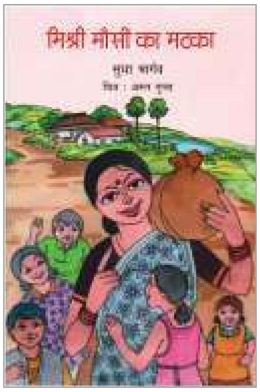

समीक्षक : **हरिसुमन बिष्ट**

लेखक : **सुधा भार्गव**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 76

मूल्य : रु. 65/-

पहले कहानी लिखने की शुरुआत हुई या फिर कविता की; इस पर हम चर्चा नहीं करेंगे। इतना जरूर कहेंगे यदि कविता का उद्‌भव पहले हुआ तो संभवतः उसकी भी एक कहानी रही होगी, क्योंकि कहानी है ही ऐसी विधा जिसे जीवन से काटकर नहीं देख सकते, जिसे कभी कहानी के रूप में तो कभी 'कंथ' और कभी 'दंत कथा' के रूप में दादा-दादी, नाना-नानी से सुनी न हो। यह सुनने-सुनाने की परंपरा कोई दस-बीस साल पुरानी नहीं है, बल्कि युगों-युगों से चली आ रही है, जिसे बचपन में हर कोई सुनता है और जीवन के किसी पड़ाव में हर कोई उसे सुनाता है।

'मिश्री मौसी का मटका' पुस्तक पढ़ते समय बार-बार एहसास होता है कि पाठक भी अपनी दादी या नानी से कंथ सुन रहा है। विश्व के हर कोने में बसे समाजों की भाँति कभी कहानी, कभी दंत कथा तो हमारे समाज में 'कंथ' के नाम से मैंने भी सुनी हैं। ये कंथ अत्यंत रोचक, सरस और शिक्षाप्रद होते थे।

'मिश्री मौसी का मटका' पुस्तक में कुल 13 कहानियाँ हैं। सभी कहानियाँ बचपन में सुने कंथों की भाँति वैसी ही रोचक, सारगर्भित और रुचिकर प्रतीत हुईं। इन कहानियों में बालमन को पढ़ने और समझकर उसे समझाने का भरपूर प्रयास किया गया है। सीधे-सीधे कहूँ तो इनमें बाल मनोभावों को उकेरने का भरसक सार्थक प्रयास

किया गया है। बच्चे इसलिए बहुत खुश हैं, क्योंकि उनकी मंगला मौसी आज गाँव से आ रही हैं। वह हँसोड़ हैं, उनके व्यवहार से हर बच्चा खुश रहता है। बच्चों ने ही मंगला मौसी को कई उपनाम दिए हैं। जिसे भी मौसी जिस रूप में दिखीं, जैसे व्यवहार में प्रतीत हुईं, उसने वैसा ही संबोधन मौसी की शान में गढ़ दिया है। उन्हें लगता है, मौसी का मिठाई बनाने में कोई मुकाबला नहीं। वह जब भी गाँव से आती हैं, किसनू के लिए कलाकंद, रसीली को रसगुल्ला, गणेशी को गुलाब जामुन अवश्य लाती हैं। किंतु इस बार बच्चों ने मन बना लिया है कि इस बार मौसी से मुर्गी की कहानी भी सुनेंगे। वे बेसब्री से उनकी प्रतीक्षा करने लगते हैं। मौसी के पास सुनाने को एक मुर्गी की ही कहानी नहीं होती वह तो कहानियों और किस्सों की जैसे पिटारा हैं। एक बार शुरू होती हैं, तो फिर मुर्गीखाने का रॉबर्ट, कबड्डी-कबड्डी, जल नगरी की कहानी, नदी की सैर के साथ-साथ देवदूतों का काफिला, परोपकारी डॉक्टर की कहानी भी सुना देती हैं। मजेदार बात यह है कि उनकी कहानियों में सिर्फ कहानी नहीं होती, बच्चों को हँसी से लोटपोट होने के लिए बहुत कुछ होता है, जिसे वह फुलझड़ियो की भाँति छोड़ती रहती हैं, जिनमें हँसी-मजाक, नीतिपरक किस्से, पारिवारिक किस्से होते हैं, विज्ञान को समझाने की अद्भुत कला उनमें मौजूद रहती है। कुल मिलाकर मौसी की बुद्धि का पिटारा जब खुलता है तो एक किस्से के बाद दूसरे किस्से को सुनने की उत्सुकता बच्चों के मन में तेज हो जाती है। उनके लिए ज्ञान-विज्ञान का एक नया अध्याय खुलता है। यही इन कहानियों को लिखने की सार्थकता है।

'कबड्डी-कबड्डी' कहानी में वह बहुत सहजता से एक वृद्ध बाबा के मन की परतों को खोलती हैं। बच्चे पूछते हैं, आपको भी अपने बच्चों के साथ सिंगापुर-मलेशिया चले जाना था। इस पर वह सहज भाव से वृद्ध बाबा से कहलवाती हैं, 'कैसे चला जाता? जिंदगीभर इस शहर में रहा हूँ। यहाँ मेरे दोस्त हैं, मेरे भाई हैं। मुसीबत आने पर हम सब भाग-भागकर एक-दूसरे के पास चले जाते हैं। होली-दिवाली साथ मिलकर मनाते हैं। इतना प्यार, इतना अपनापन क्या अन्य जगह पर मिलेगा!'

इसी कहानी के एक पृष्ठ पर जब बच्चे अपनी बाबा के पास होने की सूचना घर में नहीं दे पाते हैं तो उन्हें बहुत समझाने पर भी मुसद्दी-फिसड्डी अड़ जाते हैं और कहते हैं, "कुछ भी कह लो, हम तो यहीं रहेंगे।" बाबा उन्हें प्यार से समझाते हैं, "बेटा तुम समझते क्यों नहीं? घर न पहुँचने से उन्हें चिंता हो जाएगी।"

मुसद्दी बाबा से ही फोन माँगता है और अपने घर में सूचना देता है। चिंतित पिता मुसद्दी के सूचना देने के बावजूद जब बाबा के यहाँ पहुँचते हैं तो वह झट से खुशी से कहता है, "पापा आ गए। पापा, हमारे नए दोस्त से मिलो। यह रोबोट है और ये हैं रोबोट के बाबा। इसने ही बताया कि बाबा कितने अच्छे होते हैं।"

उक्त कहानी यह संकेत देने का भी प्रयास करती है कि हमारा भविष्य कैसा होगा? एकदम रोबोट से संचालित होगा। रोबोट ही हमारे संबंधों और गहरे रिश्तों की पड़ताल करेगा और हमारे कर्तव्यों की भी। दैनिक जीवन से जुड़ी और दैनिक जरूरतों की महत्वपूर्ण जानकारियाँ देती सभी कहानियाँ रोमांचित करने वाली हैं और शिक्षाप्रद भी हैं।

इस पुस्तक की सभी कहानियों में जीवन अनुभवों को परोसा गया है। साथ ही, बाल-मनोविज्ञान को समझाने का प्रयास किया है।

लोकराज के लोकनायक

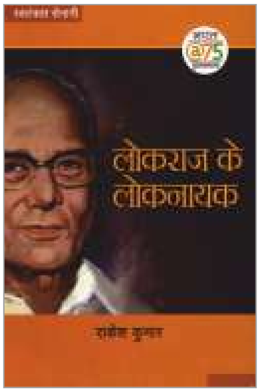

समीक्षक : **योगेन्द्र नाथ शर्मा 'अरुण'**

लेखक : **राकेश कुमार**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 224

मूल्य : रु. 280/-

भारत रत्न, समाज सेवी, स्वतंत्रता सेनानी, राजनेता जयप्रकाश नारायण का जीवन संघर्षपूर्ण रहा। उन्होंने राजनीति को नए आयाम दिए और नए मानक गढ़े। उनका राजनीतिक जीवन विचारधाराओं का सतत प्रवाह रहा है। इस पुस्तक में प्रामाणिक और विस्तृत रूप से लोकनायक के राजनीतिक, सामाजिक और शैक्षिक आदि से संबद्ध विचारों को अभिव्यक्ति मिली है। यह पुस्तक जयप्रकाश नारायण के जीवन-दर्शन पर प्रकाश डालती है। पुस्तक में 29 अध्याय हैं।

अमेरिका प्रवास के दौरान विद्यार्थी जीवन में जेपी मार्क्सवाद से प्रभावित रहे, लेकिन भारत वापसी के बाद उन्होंने अपने आप को मार्क्सवाद से समाजवाद की ओर मोड़ लिया। वास्तव में, वे भारतीय राजनीति के उन पुरोधाओं में शामिल रहे, जिन्होंने भारतीय राजनीति से वैचारिक अस्पृश्यता की समाप्ति की दिशा में पहल की।

जेपी संपूर्ण जीवन विपरीत परिस्थितियों से जूझते रहे। उन्हें एक तरफ आजीविका की चिंता थी तो दूसरी ओर भारत की आजादी की, लेकिन उन्होंने देशहित को ही सर्वोच्च माना। उनके अंदर स्वदेश प्रेम के बीज उस समय प्रस्फुटित हुए जब 1929 में बारदोली के सरदार वल्लभभाई पटेल और बिहार के सुप्रसिद्ध कांग्रेसी नेता बिहार के मुंगेर आए। स्वदेश वापसी के बाद यह स्वतंत्रता आंदोलन में उनकी पहली हिस्सेदारी थी।

लोकतंत्र की गरिमा को स्थापित करने वाले और गांधी के बाद देश के सर्वमान्य 'लोकनायक' का विरुद प्राप्त करने वाले जयप्रकाश नारायण के जीवन और कृतित्व पर लिखी गई यह पुस्तक सचमुच

लाजवाब है। इसमें लोकनायक जयप्रकाश के बाल्यकाल और शिक्षा-दीक्षा का प्रामाणिक ब्यौरा पाठक को मिल जाता है। इस पुस्तक की सबसे बड़ी विशेषता है इसकी भाषा, जो नितांत सरल, सहज और सुबोध है। भाषा की सरलता और रवानी का उदाहरण देखिए, "पैसे की कमी उनके अमेरिका जाने की राह में रोड़ा बन रही थी, किंतु चाह के आगे राह आसान होती चली गई। दृढ़ संकल्प के सामने समस्याएँ बौनी पड़ गईं और शिक्षा के दौरान संघर्ष ने व्यक्तित्व की विशालता को व्यापक फलक दिया, एक अलग विहान दिया।" ऐसे प्रसंग जहाँ जयप्रकाश जी की जीवट की गवाही देते हैं, वहीं लेखक की भाषा की सरलता का प्रमाण भी बन गए हैं।

'प्रभावती के ब्रह्मचर्य का सम्मान' इस पुस्तक का ऐसा अध्याय है, जो लोकनायक के जीवन में संयम और नारीत्व के प्रति सम्मान को रेखांकित करता है। बापू से उनका पत्र-व्यवहार पढ़कर जयप्रकाश जी के प्रति सहज सम्मान का भाव जगता है। लेखक ने लिखा है—"जयप्रकाश नारायण ने प्रभावती के साथ रहना शुरू कर दिया। गृहस्थ जीवन के दांपत्य की बगिया में जयप्रकाश और प्रभावती जी एक-दूसरे के ब्रह्मचर्य के व्रत की रक्षा करते हुए सम्मान के साथ जीवन की गाड़ी और स्वतंत्रता आंदोलन की मुहिम को आगे बढ़ाने में लग गए।" निस्संदेह, यह प्रसंग जयप्रकाश नारायण की आत्मिक दृढ़ता और व्यक्तिगत संयम से दांपत्य-जीवन को निभाने का प्रमाण बन गया है।

'1977 के चुनाव और जेपी की भूमिका', 'जेपी और रामवृक्ष बेनीपुरी : दो जिगर, एक जान' और 'राम बहादुर राय की जुबानी प्रेस जलने की कहानी' जैसे अध्यायों से जयप्रकाश से 'लोकराज के लोकनायक' बनने के संघर्ष की पूरी कहानी से पाठक परिचित हो जाते हैं, यह पुस्तक की उपलब्धि है।

मोसाड

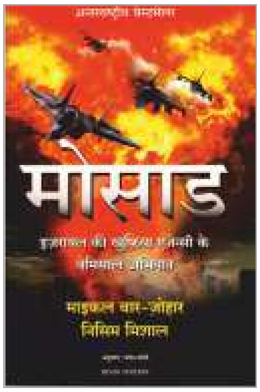

समीक्षक : **हरिसुमन बिष्ट**

लेखक : **माइकल बार-जोहार एवं निसिम मिशाल**

अनुवाद : **मदन सोनी**

प्रकाशक : मंजुल पब्लिशिंग हाउस, भोपाल।

पृष्ठ : 370

मूल्य : रु. 499/-

'मोसाड' के नाम से हर कोई परिचित है। यह इजरायल की खुफिया एजेंसी है, जो अपने देश की कानून प्रवर्तन, राष्ट्रीय सुरक्षा, सैन्य और विदेश नीति के समर्थन में जानकारी जुटाती है और उस जानकारी का खुफ़िया विश्लेषण या मूल्यांकन करती है। यह एजेंसी अपनी सूचनाएँ प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप में जुटाती है, जो संकट के समय की पूर्व चेतावनी भी मानी जाती है। गुप्त रूप से राजनीतिक या अन्य तरह की, इस तरह की एजेंसी के लिए जानकारी जुटाने वाले व्यक्ति को 'गुप्तचर' या 'जासूस' कहा जाता है। इस कार्य को 'गुप्तचर कार्य' या 'गुप्तचरी' भी कहा जाता है।

विश्व में गुप्तचर सेवा का इतिहास बहुत पुराना है जो आज तक निरंतर प्रगति की राह पर चल रहा है। इसकी जरूरत हमेशा समझी जाती रही है, जिस कारण से इसकी कार्यशैली में हर रोज प्रगति होती रहती है। गुप्तचर सूचनाओं के एकत्रीकरण के लिए अब वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग भी करते हैं। विश्व के बेहतरीन गुप्तचर सेवा की सूची पर दृष्टि डालें तो कुछ प्रमुख एजेंसियाँ अपने महत्वपूर्ण कार्यों की उपलब्धियों के लिए हमेशा चर्चा में रहती हैं, जिनमें हमारे देश की रॉ, पाकिस्तान की आई.एस.आई., ब्रिटेन की एम.आई.-5, एम.आई.-6, अमेरिका की सी.आई.ए., रूस की के.जी.बी. और इजरायल की मोसाड। कई देशों में खुफिया पुलिस के अतिरिक्त स्वतंत्र गुप्तचरों का एक व्यावसायिक रूप भी है, जो स्वतंत्र रूप से अपने निजी मामलों में जानकारी जुटाने के लिए खुफिया नियुक्त करते हैं, जो गोपनीय रूप से उनके लिए सूचनाएँ जुटाते हैं। यहाँ यह उल्लेख करना भी समीचीन होगा कि विशेष रूप से वर्तमान या संभावित विरोधियों के इरादों को समझने में सहायता के लिए राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय संकट प्रबंधन के कार्य दायित्व का निर्वहन भी ये एजेंसियाँ करती हैं। राष्ट्रीय रक्षा योजना और सैन्य अभियानों के शुरू होने से पूर्व संपूर्ण जानकारी जुटाने में भी इनकी महत्वपूर्ण भूमिका मानी जाती है।

हमारे देश में गुप्तचरी का उल्लेख मनुस्मृति और कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मिलता है, जिसमें गुप्तचरों के उपयोग और उनकी श्रेणियों का विस्तार से वर्णन किया गया है। रामायण और महाभारत में भी इसके प्रमाण मिलते हैं।

इस पुस्तक में उल्लिखित अभियान में योज़ेल नामक एक सुंदर, आकर्षक युवक का किस्सा है। योज़ेल की गलती यह थी कि उसने गलत माँ-बाप का चुनाव कर लिया था—ऐसा उसके नाना नहमान श्तार्केस का सोचना था। वह बूढ़ा और एक धर्मांध हसीद था। व्यवहार में बहुत सख्त और अड़ियल किस्म का। उसे कोई झुका नहीं सका था—न.के.। जे.बी. के ठग और न ही साइबेरिया के सोवियत लेबर कैंप, जहाँ उसने द्वितीय विश्वयुद्ध का कुछ समय गुजारा था। उसने अपने अड़ियल व्यवहार के कारण वहाँ अपनी एक आँख और बर्फ में गल जाने की वजह से तीन अंगुलियाँ गँवा दी थी। फिर भी, उसका मनोबल नहीं टूटा था, बल्कि उसके मन में सोवियतों के प्रति नफरत और तेज हो गई थी, जो 1951 में अपनी चरम पराकाष्ठ में पहुँच गई थी, जब गुंडों के एक गिरोह ने उसके बेटे की चाकू मारकर हत्या कर दी थी। अब उसे अपने दो बेटों और एक बेटी, इदा के

जीवित रहने पर ही संतोष करना पड़ा था। इदा की शादी उसने एक दर्जी से कर दी थी, जिनकी दूसरी संतान योज़ेल थी—जो चार साल की उम्र में अपने अभिभावकों के साथ इजरायल में बस गया था। वही योज़ेल एक दिन इजरायल की खुफिया एजेंसी मोसाड के लिए लक्ष्य और उसे तलाशना एक चुनौती बन गया।

दरअसल, होलोन में बसने के उपरांत योज़ेल के पिता आल्टर कपड़े के कारखाने में काम करने लगे। यहीं से पति-पत्नी पर जो मुसीबतों का कहर टूटा उसका विस्तार से इस पुस्तक में वर्णन किया गया है। जहाँ उनकी कहानी रोचक है, वहीं कई बार जीवन के लिए चुनौतीपूर्ण और रोंगटे खड़ी कर देती है। योज़ेल के गायब हो जाने से किस्सा आरंभ होता है, जब मोसाड को उसे बहुत ढूँढ़ने पर कोई सुराग नहीं मिलता और मामला इजरायल के सर्वोच्च न्यायालय तक पहुँच जाता है, तब वहाँ यह सिद्ध होता है कि योज़ेल की जानकारी उसके नाना को है। न्यायालय उसके नाना को तीस दिन के अंदर योज़ेल को उसके माता-पिता को सौंपने और उसे अदालत में पेश करने का आदेश देता है, जिसके जवाब में योज़ेल का नाना अपने जवाब में कहता है, "मैं अपनी बुरी सेहत की वज़ह से नहीं आ सकता।" अंततः नाना की गिरफ्तारी के आदेश हो जाते हैं। गहरी खोजबीन के बाद एक दिन इजरायल की गुप्तचर एजेंसी 'मोसाड' योज़ेल का पता लगा लेती है। 04 जुलाई, 1962 को इजरायल में अवकाश घोषित कर दिया जाता है, क्योंकि उस दिन योज़ेल को लेने वाले विमान को लॉर्ड हवाई अड्डे पर उतरना होता है। अखबारों में इजरायल की खुफिया एजेंसी की कर्तव्यनिष्ठा और कार्यकुशलता की सराहना होती है।

इस पुस्तक को 21 अध्यायों में विभाजित किया गया है। हर अध्याय में किस्से-ही-किस्से हैं, जिन्हें इतिहास के कालक्रमानुसार बड़ी प्रामाणिकता से प्रस्तुत किया गया है। जो लोग अपने राष्ट्र और राष्ट्र की इन महत्वपूर्ण संस्थाओं से प्यार और उनका सम्मान करते हैं, उन्हें यह पुस्तक आवश्यक रूप से पढ़नी चाहिए।

कतार में अंतिम

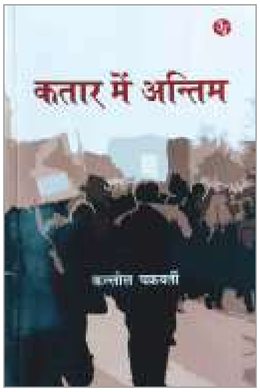

समीक्षक : **रोहित कौशिक**
लेखक : **कल्लोल चक्रवर्ती**
प्रकाशक : अनन्य प्रकाशन, दिल्ली।
पृष्ठ : 144
मूल्य : रु. 175/-

आज कविता लिखने में जिस तरह की जल्दबाजी दिखाई जा रही है, वह कविता को एक अजीब-सी प्रतिस्पर्धा में धकेल रही है। इस प्रक्रिया के कारण कविता में तात्कालिकता हावी है। निश्चित रूप से कविताओं में तात्कालिक मुद्दे भी दर्ज होने चाहिए, लेकिन यदि सिर्फ तात्कालिक मुद्दों पर शाम तक ही कविताएँ लिख दी जाएँगी तो वे वैचारिक रूप से कितनी परिपक्व होंगी, कहा नहीं जा सकता। यही कारण है कि इस दौर में सतही कविताओं की संख्या बढ़ती जा रही है। इससे अंततः कविता का ही नुकसान हो रहा है। इस माहौल में धैर्य से कविता लिखने वाले कवि कम रह गए हैं। कल्लोल चक्रवर्ती ठहरकर कविताएँ लिखते हैं। उनकी कविताएँ भी ठहरकर पढ़ी जाने वाली कविताएँ हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि उनकी कविताओं में कोई घुमाव है, कहने का तात्पर्य यह है कि उनकी कविताएँ बड़े फलक पर गंभीर विश्लेषण की माँग करती हैं।

इस संग्रह की कविताएँ बदलते समय को बहुत ही जिम्मेदारी और सलीके के साथ दर्ज करती हैं। इन कविताओं में न तो बनावटी भाषा है और न ही बनावटी चिंता। हम ज्यों-ज्यों संग्रह की कविताओं से गुजरते जाते हैं, त्यों-त्यों कवि के हृदय में प्रवेश करते चले जाते हैं। हमें एहसास होने लगता है कि जिस तरह कवि का हृदय निर्मल है, वह वैसी ही निर्मल दुनिया बनाना चाहता है। एक ऐसी पाक दुनिया जहाँ कोई छल, क्रूरता और गैर-बराबरी न हो।

करोड़ों अभावग्रस्त आँखों की पुतलियों में आग और पानी की तरह उपस्थित रहने की इच्छा रखने वाला यह कवि बड़ी इच्छाएँ नहीं पालता है। वह हर हाल में आम आदमी बनकर आम आदमी के पक्ष में खड़ा रहना चाहता है। निश्चित रूप से एक सच्चा कवि बड़ी इच्छाओं के चक्रव्यूह में कभी नहीं फँसना चाहेगा। बड़ी भौतिक इच्छाएँ हमें संवेदनहीन बनाती हैं। यही कारण है कि कवि इस अँधेरे समय में रोशनी के एक कतरे के लिए लंबा संघर्ष करने के लिए तैयार है। संग्रह में जिंदगी के विभिन्न पहलुओं को समेटे एक से बढ़कर एक मार्मिक कविताएँ मौजूद हैं, जो पाठकों को गहरे प्रभावित करती हैं। कुछ कविताएँ इस संग्रह का एक अलग स्थान निर्धारित करती हैं और इसे सच्चे अर्थों में समृद्ध भी करती हैं। पत्रकारिता के स्याह पहलुओं पर बहुत कम कविताएँ दिखाई देती हैं। इस दौर की पत्रकारिता कई तरह के दबाव झेल रही है। आज बहुत कम पत्रकारों को पत्रकारिता की गरिमा बचाने की चिंता है। यही कारण है पत्रकारिता पर विश्वसनीयता का संकट बढ़ता जा रहा है। कल्लोल लंबे समय से पत्रकारिता से जुड़े हैं। इसलिए उन्होंने 'चौथा खंबा' और 'चौथा खंबा दरक रहा है..' जैसी धारदार और सच्ची कविताएँ लिखकर एक सच्चा कवि होने का धर्म निभाया है। इस दौर में जबकि पाकिस्तान भेज दिए जाने की धमकी को एक नारा बना दिया गया है। कवि सवाल उठाता है कि हम खुद पाकिस्तान क्यों बनते जा रहे हैं। दरअसल, कट्टरपंथी राष्ट्रवादी उस दूसरे पाकिस्तान का जिक्र बिलकुल नहीं करते हैं, जिसकी स्वरलहरियाँ हमें सुकून की बारिश में भिगो देती हैं। वे जान-बूझकर उसी पाकिस्तान का जिक्र करते हैं, जिसकी कट्टरवादी सोच उनकी कट्टरवादी सोच से मिलती है। इस दौर में ऐसी कविता लिखने वाले निडर कवि कम ही मिलते हैं।

कवि ने कोरोना काल के दर्द को बहुत ही मार्मिकता के साथ अपनी कविताओं में दर्ज किया है। कोरोना के समय मजबूरी में गाँव जाना हो, गाँव में कोई विकल्प न होने के कारण गाँव से शहर आना हो, अपने परिचितों को न बचा पाने की बेबसी हो या मुसीबत में हाथ बढ़ाने वाले लोगों का सहारा हो, कवि ने विभिन्न कोणों से उस समय को याद करते हुए अपनी रचनात्मक संवेदनशीलता प्रस्तुत की है। कोरोना काल में सैकड़ों किलोमीटर पैदल चलकर अपने गाँव जाते हुए लोग और दहशत के बीच चीख-पुकार के दृश्यों को यादकर हम आज भी सिहर उठते हैं। कवि की कई कविताओं का केंद्रीय तत्व विस्थापन है। हालाँकि, यह तत्व सतही तौर पर हमें दिखाई नहीं देता, लेकिन ध्यान से पढ़ने पर हमें इस तत्व की मौजूदगी महसूस होती है। दरअसल, बहुत छोटा विस्थापन भी हमारी जिंदगी को कई तरह से प्रभावित करता है। इस दौर में कुछ कवि चिकनी-चुपड़ी भाषा की चाशनी में लिपटी रचनाओं के माध्यम से यथार्थ से मुँह चुराते हुए नजर आते हैं। इसके विपरीत कल्लोल चक्रवर्ती यथार्थ से लगातार मुठभेड़ करते हुए दिखाई देते हैं। कुल मिलाकर कतार के अंतिम व्यक्ति के अनगिनत दुखों को विभिन्न स्तरों पर समझने का प्रयास करती ये कविताएँ हमारे चेतना तंतुओं को झंकृत तो करती ही हैं, निडरता के साथ सच्चाई के पक्ष में भी खड़ी नजर आती हैं।

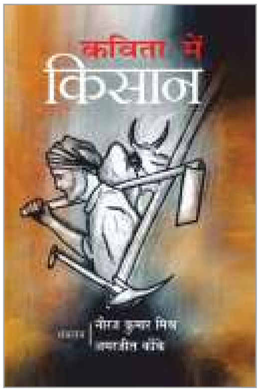

समीक्षक : **राकेश रेणु**

संकलन : **नीरज कुमार मिश्र**

अमरजीत कौंके

प्रकाशक : लोकमित्र प्रकाशन, दिल्ली।

पृष्ठ : 280

मूल्य : रु. 250/-

कविता में किसान

भारत किसानों का देश है। कोई भी भारतवासी ऐसा न होगा जिसकी जड़ें किसानी में न हों। प्राचीनकाल से ही यहाँ की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था कृषि आधारित रही है। आज़ादी के बाद भौतिक विकास की जरूरत व विकसित दुनिया का हमकदम बनने की इच्छा ने किसानी का महत्व कम किया है। इसने अर्थव्यवस्था में कृषि की भागीदारी भी कम की है। बावजूद इसके समाज में कृषि और किसानी का केंद्रीय स्थान बना हुआ है, न केवल समाज में, बल्कि देश की आर्थिकी में भी। यह केंद्रीयता हमारी भाषा-बोली, खानपान, तीज-त्योहार, साहित्य, संस्कृति, रहन-सहन और पहनावे तक में लक्षित की जा सकती है। स्वाधीनता के बाद बार-बार दरपेश होने वाली भुखमरी और अकाल की समस्या को भी किसानों ने नई तकनीक के साथ कदम मिलाकर, अपने उद्यम से दूर किया है। उन्होंने अनेक बार देश को न केवल दुर्भिक्ष से बचाया, बल्कि खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भर बनाया और उससे भी आगे निर्यात सक्षम बनाया है।

लेकिन, आज किसानी संकट में है। अर्थव्यवस्था में केंद्रीय भूमिका होने के बावजूद धीरे-धीरे इसका महत्व कम होता जा रहा है। दूसरों को भोजन देने वाले किसान खुद भुखमरी की कगार पर हैं। फसल खराब हो जाने तथा साहूकारों के भारी ब्याज दर वाले कर्ज के कारण दशकों से किसानों की आत्महत्या की दर कम होने का नाम नहीं ले रही, अपितु निरंतर बढ़ती ही जा रही है। किसानों को अपनी उपज का पर्याप्त मूल्य नहीं मिलता। किसानी पर चौतरफा हमला है। अनेक छोटे किसान खेतिहर मजदूर या शहरी मजदूर में बदल गए हैं। किसानी छोड़ दूसरे काम करने के लिए विवश हुए हैं।

'कविता में किसान' में गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' और सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' से लेकर नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, रामविलास शर्मा, चंद्रकांत देवताले, केदारनाथ सिंह, नरेश सक्सेना, राजेश जोशी, आलोक धन्वा, विष्णु नागर, अनामिका, मदन कश्यप, सविता सिंह, बल्ली सिंह चीमा, देवी प्रसाद मिश्र, सुभाष राय आदि से होते हुए युवतम कवियों—अनुज लुगुन, जावेद आलम खान, रानी कुमारी और गोलेन्द्र पटेल तक की कविताएँ सहेजी गई हैं। इस लिहाज से यह एक दस्तावेजी संकलन है। यह 20वीं और 21वीं सदी के आरंभिक दो दशकों के अग्रणी कवियों का प्रतिनिधि संकलन है।

'कविता में किसान' की भूमिका भक्तिकालीन साहित्य और दलित साहित्य के मर्मज्ञ आलोचक बजरंग बिहारी तिवारी ने लिखी है। तिवारीजी ने भक्तिकालीन कवियों की किसान संबंधी कविताओं के संदर्भ सहित उदाहरण देकर इस संकलन का फलक और व्यापक व समावेशी बनाया है। किसान आंदोलन के दौरान भी उन्होंने किसानों और किसानी की भूमिका पर दो पुस्तिकाएँ प्रकाशित कर निशुल्क वितरित कराई थीं। 144 कवियों की कविताओं के इस संकलन के आरंभ में बजरंगजी लिखते हैं कि संत कवियों ने किसान को प्राणवायु माना है। नाम स्मरण के रूपक में संत रज्जब ने लिखा कि नाम अनाज है जो काया के हृदय रूपी घर में विद्यमान-गतिमान रहता है। प्राणरूप किसान प्राण (पवन/ऑक्सीजन) का वहन करता है—'नावं नाज उर घर बहै, बाहै प्राण किसान।' (रज्जब बानी, पृष्ठ 275) संत जन ऐसे राजा की कामना करते हैं जो किसान जैसा हो। किसान अपनी फसल की जैसी परवाह करता है, उसी तरह राजा को रैयत की करनी चाहिए। तुलसीदास कहते हैं कि माली और सूर्य भी इसी तरह के आदर्श हैं—"माली भानु किसान सम, नीति निपुन नरपाल।" (दोहावली, 507) जैसे धरती से पानी लेता सूर्य

महसूस नहीं होने देता, बल्कि बदले में बारिश करके सबको प्रफुल्लित कर देता है, वैसे ही कर संग्रह, लगान की वसूली के वक्त भानुवत भूप प्रजा को सताता नहीं है, किंतु अपनी कल्याणकारी योजनाओं से उन्हें आनंदित कर देता है। "बरसत हरषत लोग सब, करषत लखै न कोई।" (दोहावली, 508) केवल रज्जब और तुलसीदास ही नहीं, बजरंगजी भूमिका में भक्तिकालीन अनेक कवियों को याद करते हैं और उनकी पंक्तियों का भावार्थ सहित उल्लेख करते हैं। इनमें कबीर, गरीबदास, रैदास आदि अनेक भक्त कवि हैं। भूमिका पूरे संकलन को एक परिप्रेक्ष्य प्रदान करती है—राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य।

'कविता में किसान' में संकलित कविताएँ तल्लीन होकर अध्ययन और अपने समय और समाज से जुड़ने की माँग करती हैं। आधुनिक हिंदी कविता के मिज़ाज और सरोकारों को समझने में रुचि रखने वाले किसी भी सद्ग्राही के लिए इस पुस्तक का पाठ जरूरी है।

भारत जैसे देश में किसानों की मौजूदा स्थिति और चुनौतियों को समझने के लिए इसका पाठ अनिवार्य है। यह जानने के लिए भी कि संस्कृतिकर्मी उनकी चुनौतियों व जिजीविषा को किस प्रकार देख रहे हैं, इस पुस्तक की कविताओं से गुजरना जरूरी है।

जागता हुआ कस्बा

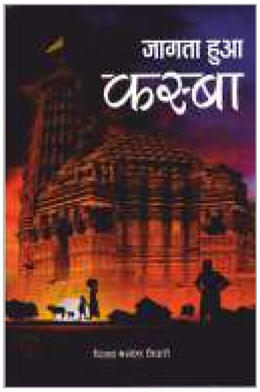

समीक्षक : **योगेन्द्र नाथ शर्मा 'अरुण'**

लेखक : **विजय मनोहर तिवारी**

प्रकाशक : इंद्रा पब्लिशिंग हाउस, भोपाल।

पृष्ठ : 188

मूल्य : रु. 295/-

यह पुस्तक उन युवाओं के लिए है जो अपनी मौज में हैं और आने वाले कल के सुनहरे सपनों में खोए हुए हैं। अतीत उनके लिए बेमानी है। उन्हें कुछ अर्थपूर्ण चाहिए। अर्थ केंद्रित हमारे समाज में अतीत की समृद्ध विरासत एक व्यर्थ विचार है। लोगों की यह उदासीनता और बेफिक्री स्पष्ट रूप से आत्मघाती है।

यह पुस्तक इस दृष्टि से बेजोड़ है कि लेखक अपनी कलम के माध्यम से भारत की आज़ादी के बाद जो अक्षम्य अपराध इतिहास के साथ हुए, उन्हें उजागर करते हैं। इस मुहिम में उनके साथी रहे इतिहासकार श्री सुरेश मिश्र, जिनकी जीवट के दर्शन हमें इस पुस्तक से होते हैं। 'कथा उदयपुर' से वे मध्य प्रदेश की राजधानी भोपाल से डेढ़ सौ किलोमीटर दूर एक ऐसे 'उदयपुर' की कथा लिखते हैं, जहाँ अतीत का गौरव सोया हुआ था और उनकी 'हैरिटेज वाक' से अंगड़ाई लेकर जाग उठा है। पुस्तक में लिखा है—"यह सच्ची कहानी एक ऐसे कस्बे की है, जहाँ अभी-अभी इतिहास ने अपना सब्र तोड़ दिया है। आठ हजार आबादी का हाशिए पर मौजूद एक ऐसा उजाड़-सा कस्बा जो बीते कई दशकों से कुछ कहना चाहता था। नाम से क्या होता है? एक उदयपुर राजस्थान में है, उसकी तकदीर देखिए। दूसरा उदयपुर मध्य प्रदेश में है, आकर उसकी बदकिस्मती भी देख लीजिए।"

मध्य प्रदेश का गुमनाम 'उदयपुर' कितना गौरवशाली रहा है, यह उसके अतीत से जाना जा सकता है। पुस्तक में लिखा गया है—"इस जगह की प्रसिद्धि नीलकंठेश्वर मंदिर से है, जो राजा भोज के बाद की पीढ़ी में हुए महाराज उदयादित्य ने बनवाया था। इस नगर का नाम 'उदयपुर' भी उनसे ही जुड़ा है। उस दौर में राजपरिवार के अन्य महत्वपूर्ण सदस्यों को राजधानी से दूर के महत्वपूर्ण नगरों और सैन्य ठिकानों की कमान सौंपी जाती थी।"

वस्तुतः 'जागता हुआ कस्बा' केवल एक किताब ही नहीं है, बल्कि मुगल आक्रांताओं द्वारा भारत के स्वर्णिम अतीत को ध्वस्त किए जाने के प्रमाणों के साथ ही आज़ादी के बाद के इतिहासकारों और सत्ताधीशों की बेईमानी का एक दस्तावेज भी है।

'कथा उदयपुर' में बड़ी ही साफगोई से आज़ादी के बाद देश के हुक्मरानों द्वारा अतीत की धरोहरों के प्रति की गई उपेक्षा को देखकर लिखा गया है—"भारत के हजारों साल पुराने इतिहास, पुरातत्व और संस्कृति में अगर वे रुचि लेते तो मध्यकाल के मुस्लिम हुक्मरानों की खूनी हकीकतें छिपा नहीं सकते थे। इसलिए यही मुनासिब समझा गया कि सेक्युलरिज्म की एक ही आँख से सब हरा-भरा देखते रहा जाए। सरकारों की बदनीयत के साथ सबसे मरियल विभागों में पुरातत्व और संस्कृति अपाहिजों की तरह घिसटते रहे हैं। दक्षिण भारत की जो महान विरासत किसी संयोग से बची रह गई, उसे भी सामने लाने में शर्म आती रही।"

पुरातात्विक महत्व के नगर उदयपुर के उद्धार की कथा के माध्यम से अतीत के गौरव को बचाने और संचित करने का जो एक संदेश दिया है, उसी के महत्व को मात्र तीन पृष्ठों में वह 'उदयपुर के अर्थ' शीर्षक से लिख गया है—"उदयपुर महान भारत की सांस्कृतिक पहचान का प्रतीक है और अगर यह भाग्य से ही बचा रह गया है तो इस अमूल्य धरोहर को उसके मूलरूप में सुरक्षित रखने और सहेजने का काम किसी और का नहीं है। वह सिर्फ उदयपुर की पंचायत के निवासियों का भी नहीं है। वह इस इलाके के हरेक नागरिक का है।"

पुस्तक के अगले अध्यायों में मध्य प्रदेश के गौरवपूर्ण अतीत को समेटे महाराज उदयादित्य के साथ-साथ नीलकंठेश्वर महादेव का स्मरण किया गया है। 'पत्थरों पर परमारों की इबारतें' शीर्षक से सँजोई गई प्रामाणिक जानकारी पाठकों को गहरी नींद से जगा देती हैं। यहाँ से प्राप्त शिलालेख हमारी विरासत की गवाही देते हैं, जो इस

देश के स्वर्णिम अतीत को अपने अक्षरों में 'अक्षर' बनाकर समेटे हुए हैं। निस्संदेह, पुस्तक का यह अध्याय 'हैरिटेज वाक' के लेखक द्वारा सुझाई अवधारणा की महत्ता को भी संपुष्ट कर देता है।

लेखक द्वारा किए गए कार्यों के परिणामस्वरूप मूर्छित पड़े एक कस्बे 'उदयपुर' के जागने की यह कथा हमारे राष्ट्र के हर युवा को पढ़ाई जानी चाहिए, ताकि वह अपनी संस्कृति और राष्ट्रीय अस्मिता को जाने और उन पर गर्व कर सके। यह एक पुस्तक मात्र नहीं है, बल्कि यह भविष्य को जगाने की कुंजी भी है।

कहाँ तुम चले गए...

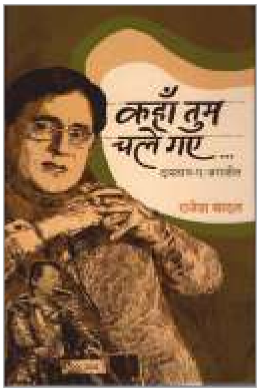

समीक्षक : **ब्रजेश राजपूत**

लेखक : **राजेश बादल**

प्रकाशक : मंजुल पब्लिशिंग हाउस, भोपाल।

पृष्ठ : 242

मूल्य : रु. 699/-

गजल का नाम लेते ही जेहन में नाम आता है जगजीत सिंह का। जगजीत सिंह इस दुनिया से चले गए, मगर लगता ही नहीं कि वे इस संसार में नहीं हैं, क्योंकि हर दूसरे-तीसरे दिन उनकी आवाज में गाई गजल सुनने या गुनगुनाने को मिल जाती है। ऐसे में जब पत्रकार राजेश बादल अपनी किताब का नाम 'कहाँ तुम चले गए, दास्तान-ए-जगजीत' लिखते हैं तो मन में ऐतराज-सा जागता है और दिल कहता है जगजीत कहीं नहीं गए वो यहीं हैं।

जगजीत सिंह की जिंदगी से जुड़े किस्सों की इस किताब की जरूरत लंबे समय से महसूस की जा रही थी, क्योंकि जगजीत सिंह ने गजल को प्राइवेट पार्टियाँ और कुछ खास लोगों की बैठक से निकाल कर बड़े मंच और फिल्मी पर्दों तक पहुँचाया। फिर आम जनता के इस प्रिय गायक की जिंदगी पर लिखा-पढ़ा जाने लायक इतना कम क्यों है। यह किताब इस कमी को कुछ हद तक पूरी करती है। राजस्थान के श्रीगंगानगर के सिख अमर सिंह और बच्चन कौर के सात बच्चों के परिवार में 08 फरवरी, 1941 को जगमोहन का जन्म होता है, जिसका नाम परिवार के गुरुजी के कहने पर जगजीत सिंह हो जाता है और यही जगजीत श्रीगंगानगर से स्कूली पढ़ाई कर कॉलेज में पढ़ने जालंधर जाता है और बाद में मुंबई पहुँचकर फिल्मों में गायन में किस्मत आजमाते हुए फिल्म और गायकी की दुनिया में बेशुमार नाम कमाता है। जगजीत सिंह को उनके पिता ने बचपन से ही गुरुवाणी और सबद गाने के लिए शास्त्रीय संगीत की शिक्षा और संस्कार डलवाए थे। यही वजह थी कि जगजीत की गायकी की रेंज बहुत विस्तृत और कई दफा चौंकाने वाली होती है। लोग कहते हैं कि इस जगजीत को तो हमने पहले कभी सुना ही नहीं। जगजीत के मुंबई के संघर्ष के किस्से, उस दौर के साथी, उनसे किए वायदे सब-कुछ को इस किताब में अच्छे से पिरोया गया है। लेखक ने बताया है कि उस दौर के सभी बड़े कलाकार जगजीत को अपने घर की प्राइवेट पार्टियों में गवाने के लिए तो बुलाते थे, मगर काम नहीं देते थे। जगजीत ने मुंबई में अपने शुरुआती दिन इन्हीं पार्टियों में गाकर गुजारे। वे अपने दोस्तों से कहते थे, "यार ऐसी पार्टियों में इसलिए जाता हूँ कि खाना-पीना मिल जाता है और थोड़ा बड़े लोगों से पहचान बढ़ जाती है, मगर काम मिलना कठिन होता है।" मगर उनकी प्रतिभा ज्यादा दिन छिपी नहीं रह सकी। पहले कुछ फिल्मी गाने, एक-दो फिल्म में थोड़ा बहुत काम और बाद में वो जब गजल की दुनिया में उतरे तो 'जग जीत' कर ही लौटे। जगजीत को गुलजार 'गजलजीत सिंह' ही कहा करते थे। इस किताब में जगजीत सिंह के पारिवारिक जीवन के सुख-दुख का भी बेहद संजीदगी से चित्रण किया गया है। चित्रा से मुलाकात, चित्रा की पुरानी जिंदगी, इस जोड़ी के जवान बेटे विवेक की मौत के बाद परिवार में आया गम और उस गम से उबरना जगजीत सिंह की जिंदगी के इन उतार-चढ़ाव को भी लेखक ने विस्तार से लिखा है, जो कई जगह दिल को छू जाता है।

जगजीत सिंह की सबसे बड़ी उपलब्धि यही रही कि उन्होंने गजल गायकी में ढेर सारे प्रयोग कर उसे इतना आसान और कर्णप्रिय कर दिया कि अमीरों की गजल आम जनता की हो गई। जगजीत के सारे एल्बमों की खासियत उनकी आसान और सुरीली गजलें रहीं, जो आज भी गुनगुनाई जा रही हैं। इस किताब में जगजीत की गायकी के अलावा उनकी जिंदादिली और उदारता के भी किस्से हैं। जगजीत कैसे मुंबई की सड़कों पर मदद करने निकलते थे और बेटी की शादी के नाम पर कार्यक्रम का निमंत्रण देने वालों को मिठाई के डिब्बे में रुपये देकर विदा कर देते थे। जगजीत सिंह का हॉर्स रेसिंग के प्रेम उनके नए गायकों और शायरों से रिश्ते की भी बात इस किताब में विस्तार से की गई है। राजेश बादल ने जगजीत की जिंदगी से जुड़े अनेक लोगों से मिलकर जो किस्से कहानियाँ जुटाए हैं, वो इस किताब की जान हैं। जगजीत सिंह के पुराने रिकॉर्ड्स और एल्बम के बारे में भी लेखक ने अच्छी जानकारी जुटाई है।

दरअसल, लेखक ने अपने राज्यसभा टीवी के दिनों में जगजीत सिंह पर जब फिल्म बनाई थी। उस दौरान हुई उनके शोध इस किताब के काम आए। इस किताब की भाषा भी बहुत कुछ चित्र वाली है।

इस किताब में जगजीत सिंह की जिंदगी से जुड़े कुछ अच्छे और दुर्लभ फोटोग्राफ भी हैं। इस तरह से यह किताब जगजीत सिंह के चाहने वालों के लिए बेशकीमती तोहफे से कम नहीं है।

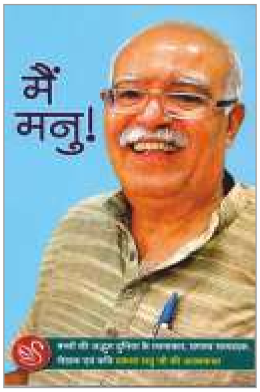

समीक्षक : **ब्रजेश कृष्ण**

लेखक : **प्रकाश मनु**

प्रकाशक : श्वेतवर्णा प्रकाशन, नई दिल्ली।

पृष्ठ : 320

मूल्य : रु. 399/-

मैं मनु!

(आत्मकथा)

हिंदी साहित्य में लेखकों ने अपनी आत्मकथाएँ कम ही लिखी हैं। दरअसल, आत्मकथा लिखना एक तरह के जोखिम और दुस्साहस का काम है। अगर आत्मकथा पूरी तरह ईमानदारी से न लिखी जाए तो वह आत्मप्रशंसात्मक प्रलाप बनकर रह जाती है। सुपरिचित कवि-कथाकार तथा जाने-माने बाल साहित्यकार प्रकाश मनु की आत्मकथा का प्रथम भाग 'मैं मनु' कई दृष्टियों से स्वागत योग्य है। इस भाग में प्रकाश की बाल्यावस्था से लेकर किशोरावस्था तक का ब्योरा है।

एक मध्यमवर्गीय भरा-पूरा परिवार, जो पाकिस्तान के एक गाँव में खुशहाली का जीवन व्यतीत कर रहा था, भारत के बँटवारे की भयानक त्रासदी का शिकार हुआ। लाखों लोगों की तरह यह परिवार भी अपनी जमीन और घरबार छोड़कर दर-दर की ठोकरें खाने के लिए विवश हुआ और अमृतसर, अंबाला होता हुआ अंततः उत्तर प्रदेश के शिकोहाबाद शहर में पहुँचा। नौ भाई-बहनों के बीच आठवीं संतान के रूप में जन्मे प्रकाश मनु ने 12वीं तक की पढ़ाई इसी छोटे-से शहर में पूरी की और बाद में पढ़ने के लिए आगरा और कुरुक्षेत्र चले गए। जीवनी के इस खंड में उनके परिवार के साथ ही, इस शहर का भी इतिहास साथ-साथ चलता है।

बत्तीस अध्यायों में विभाजित यह पुस्तक एक स्वप्नदर्शी बालक के बाह्य और आंतरिक संसार का ऐसा लेखा-जोखा है, जो यह बहुत स्पष्ट संकेत देता है कि प्रकाश मनु के लेखक बनने के रास्ते पर चलने की शुरुआत तो उनके बचपन से ही हो चुकी थी, यद्यपि परिवार में ऐसा कोई साहित्यिक वातावरण नहीं था। कृति को पढ़ते हुए यह सवाल बार-बार मन को कचोटता है कि आखिर वे कौन-सी रहस्यमय शक्तियाँ हैं, जो जीवनयापन के लिए जद्दोजहद में लगे बहुत बड़े परिवार में से एक बालक को लेखक बनने के लिए चुनती हैं।

यह प्रकाश मनु की अत्यंत गहन संवेदनशीलता और विलक्षण स्मरणशक्ति का कमाल है कि उनके जेहन वे छोटी-सी-छोटी घटनाएँ, अपने लघुतम ब्योरे के साथ अब तक बची हुई हैं, जिन्होंने उनकी जिंदगी को सँवारने के लिए नींव का काम किया। कोई भी जीवन-वृत्तांत किसी पाठक के लिए निरर्थक ही बना रहेगा, अगर उसमें लेखक के जीवन की घटनाओं के साथ उसके समय की धड़कन का स्वर समाविष्ट न किया गया हो। स्मृति में विगत को जाग्रत करना अपने भीतर खोए हुए समय को पुनः प्राप्त करने जैसा है। यह आत्मकथा आज़ादी के तुरंत बाद का एक ऐसा दस्तावेज है जिसमें विभाजन की त्रासदी से जूझते परिवार की संघर्ष-गाथा है, परिवारीजनों की पारस्परिक आत्मीयता के अद्भुत दृश्य हैं, एक बढ़ते हुए बच्चे के आंतरिक संसार का ताप है और तत्कालीन समाज को समझने की कुंजी भी है।

पिछले कुछ वर्षों में संयुक्त परिवारों का छीजने और बिखरने का संकट बहुत तेजी से बढ़ा है। ऐसे में लेखक का अपने माता-पिता, भाई-बहनों और कुछ रिश्तेदारों का किंचित विस्तार, आदर और स्नेह से स्मरण करना इस बंजर समय में सुखद अनुभूति देता है। इन वृत्तांतों में माँ, पिता और एक भाई, श्याम भैया का स्मरण तो पाठक के भीतर एक अनूठी तरलता का संचार करता है। विशेष रूप से माँ का समुद्र की गहराई जैसा वात्सल्य बहुत कुशलता से चित्रित हुआ है। अत्यंत संवेदनशील, कुछ कर गुजरने के लिए हर समय राह तलाशते रहने वाला और अपनी हठ के लिए कुछ भी करने और सहने को तत्पर किशोर, प्रायः मस्तिष्क की बजाय भावना से संचालित होता है। और अगर बहुत छोटी उम्र में ही जीवन के आदर्श विवेकानंद जैसे महापुरुष बन चुके हों तो वह अपने लिए एक तरह के सम्मोहन का लोक रचने लगता है।

किसी व्यक्तित्व के निर्माण में मित्रों और कुछ शुरुआती अध्यापकों का योगदान बहुत महत्व रखता है। इस बात को रेखांकित करते हुए वे सभी मित्र और अध्यापक यहाँ उपस्थित हैं, जिन्होंने प्रकाश मनु को साधारण से विशेष बनने में गहराई से योगदान किया। परिस्थिति और भावना के चित्रण में अकथनीय ईमानदारी और सम्मोहन का अद्भुत मिश्रण यहाँ उल्लेखनीय है।

बचपन के अनुभव बीत जरूर जाते हैं, मगर उनकी छुअन और सिहरन संवेदनशील व्यक्ति के मन में कभी धुँधली नहीं पड़ती। आत्मकथा के लेखन में रचनाकार की कुशलता इस बात पर निर्भर करती है कि वह अपने बचपन की घटनाओं की शृंखला में संवेदना के आंतरिक प्रवाह को पाठकों के लिए जीवंत बना पाने में कितना सक्षम है। बातें या घटनाएँ कितनी ही मामूली हों, परंतु महत्वपूर्ण यह है कि वे बालमन को कैसे छूती हैं! जीवन की पक्षधरता में रचनाशीलता के अंकुरण की तलाश करता हुआ यह लेखक ऐसी ही तमाम घटनाओं को सँजोकर हमारे समक्ष रोचक शिल्प में परोसता है।

रचनाकार का जीवन जितना प्रामाणिक, मूल्यवान और सच्चा होगा, रचना में उसकी अभिव्यक्ति उतनी ही प्रामाणिक और खरी होगी। इस दृष्टि से इस कृति को पढ़ने के बाद आश्वस्ति होती है और उम्मीद भी कि साहित्य-जगत आत्मकथा के इस अत्यंत पठनीय खंड का स्वागत करेगा और शेष खंडों के आने की प्रतीक्षा भी!

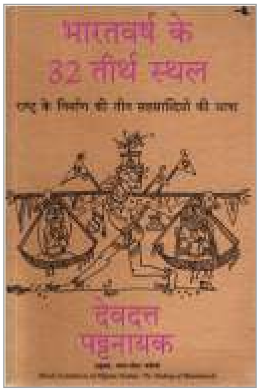

समीक्षक : **डॉ. जितेन्द्र जीतू**
लेखक : **देवदत्त पटनायक**
अनुवादक : **रचना भोला 'यामिनी'**
प्रकाशक : मंजुल पब्लिशिंग हाउस, भोपाल।
पृष्ठ : 222
मूल्य : रु. 299/-

भारतवर्ष के 32 तीर्थस्थल

देवदत्त पटनायक विख्यात पौराणिक कथा विशेषज्ञ हैं। हाल ही में इनकी नई किताब 'भारतवर्ष के 32 तीर्थस्थल' के नाम से आई है जो कि 'पिलग्रिमनेशन : द मेकिंग ऑफ भारतवर्ष' का हिंदी अनुवाद है। इस किताब के माध्यम से लेखक ने भारत के 32 तीर्थस्थलों की सैर कराई है। इन 32 तीर्थस्थलों का चुनाव करना आसान कार्य नहीं था। इनको चुनना तो कठिन था ही, उन्हें एक विशेष क्रोनोलॉजी के अंतर्गत स्थान देना और भी कठिन कार्य था, जिसका पुस्तक में सफलतापूर्वक निर्वहन किया गया है।

लेखक ने कालखंड के अंतर्गत पूरी पुस्तक को आठ युगों में विभक्त किया है। तीन हजार वर्षों से भी अधिक वाले कालखंड को वैदिक युग कहा है, जिसके अंतर्गत वाराणसी, सौंदत्ती, वैष्णो देवी, मनाली और द्वारका नामक तीर्थस्थलों को स्थान दिया गया है। ढाई हजार वर्षों वाले कालखंड को 'श्रमण युग' कहा गया, जिसके अंतर्गत रणकपुर, श्रवणबेलगोला और बोधगया को स्थान मिला है। इसी प्रकार 'पौराणिक युग' के अंतर्गत मदुरई, पुरी, कोल्हापुर, सिंहाचलम, तिरूपति और उज्जैन को रखा गया है। 'तांत्रिक युग' में गुवाहाटी, दिल्ली, हीरापुर और शारदा को स्थान मिला है। 'इस्लामिक युग' के अंतर्गत उदवाड़ा, श्रीरंगम, लखनऊ और अमृतसर को रखा गया है। 'भक्ति युग' में जेजुरी, नाथद्वारा, पंढरपुर और बदरीनाथ को जगह मिली है। 'यूरोपियन युग' में वेलंकन्नी, कोलकाता और दिल्ली आते हैं तो 'राष्ट्र युग' अर्थात वर्तमान युग में आगरा, शबरीमाला और मुंबई को जगह मिली है।

इन तीर्थस्थलों में अनेक स्थान ऐसे भी हैं जिनके बारे में सामान्यजनों को सीमित जानकारी है या बिलकुल भी जानकारी नहीं है, जैसे—सौंदत्ती, महाराष्ट्र और कर्नाटक की सीमा पर स्थित प्रसिद्ध रेणुका मंदिर, जो 16वीं शताब्दी में बना था। या फिर श्रवणबेलगोला, जो बंगलुरू से 150 कि.मी. की दूरी पर स्थित एक झील है, जिसे सफेद (बिली) झील (गोला) के नाम से जाना जाता है। या फिर सिंहाचलम, आंध्रप्रदेश के विशाखापट्टनम के निकट पहाड़ी पर स्थित तीर्थ, जहाँ पर विष्णु के पौरूष से भरपूर उग्र संयुक्त रूपों विष्णु, वराह और नरसिंह का पूजन होता है। या फिर शारदा मंदिर, जो पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर में नियंत्रण रेखा के पार किशनगंगा नदी के निकट स्थित है। जेजुरी, पुणे से लगभग 50 कि.मी. दूर एक प्रमुख आराध्य स्थल है, जो पहाड़ी पर स्थित है। पुस्तक को पढ़कर इन स्थानों से संबंधित भरपूर जानकारी मिलती है।

जिन तीर्थस्थलों पर सामान्यतः लोग जाते रहे हैं, उनके बारे में भी पुस्तक में ऐसे तथ्यों की भरमार है, जिन्हें शायद कम ही लोग जानते होंगे।

पुस्तक में दिए गए तीर्थस्थलों के इतिहास का वर्णन अत्यंत सुंदर और तथ्यपरक है कि इतिहास होने के बावजूद वह कहीं से बोर नहीं करता। बीच-बीच में रोचक मान्यताओं और परंपराओं का भी वर्णन है। साथ ही स्थान-स्थान पर जनश्रुतियों की भी चर्चा की गई है। उदाहरण के रूप में वैष्णो देवी के मंदिर को ही लीजिए। जम्मू की पहाड़ियों में वैष्णो देवी एक अत्यंत लोकप्रिय तीर्थस्थल है। वैष्णो देवी को दक्षिण भारत की एक राजकन्या के रूप में भी जाना जाता है, जो राम से भेंट करने के बाद उनसे विवाह करने की इच्छा व्यक्त करती है, परंतु राम एक पत्नीव्रता हैं, वे कहते हैं कि वे राम के रूप में उससे विवाह नहीं कर सकते, परंतु अगले जन्म में वे निश्चित रूप से उनके पति होंगे। राजकुमारी एक पर्वत पर चली जाती हैं और तप करने लगती हैं। रावण द्वारा उन्हें अपनी पत्नी बनाने की इच्छा व्यक्त करने पर वे स्वयं को पवित्र अग्नि के सुपुर्द कर देती हैं और वैष्णो देवी के रूप में पुनः जन्म लेती हैं। जब वे ध्यानरत होती हैं तो भैरव का ध्यान उनकी ओर जाता है और वह उनसे भोजन (काम) की माँग करता है। देवी अस्वीकार करती हैं। कहती हैं कि वे राम की प्रतीक्षा में हैं। भैरव के व्यवहार से बचकर वे भागती हैं। यह वही मार्ग है जिससे होकर आज तीर्थयात्री पर्वत पर जाते हैं।

ऐसे ही कुल 32 तीर्थस्थलों और राष्ट्र के निर्माण की तीन सहस्त्राब्दियों का रोचक वर्णन इस पुस्तक में मिलता है। इस सुंदर पुस्तक का हिंदी में अनुवाद रचना भोला यामिनी ने किया है, जिसका आस्वाद मूल पुस्तक पढ़ने जैसा ही है।

समीक्षक : **डॉ. जितेन्द्र जीतू**

लेखिका : **उषा यादव**

प्रकाशक : प्रतिभा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली।

पृष्ठ : 238

मूल्य : रु. 500/-

अग्नि-राग

उषा यादव का नया उपन्यास ‘अग्नि-राग’ नारी सशक्तीकरण की गाथा है। यह एक ऐसी युवती की कहानी है, जिसने प्रेम में पड़कर अपना सर्वस्व खो दिया, मन, शांति, देह, समय, संबंध, सम्मान और अपनी मुस्कुराहटें भी। लेकिन जब उसने संघर्ष का पथ चुना और दुनिया को आईना दिखाने की ठानी तो उसके समक्ष क्या-क्या कठिनाइयाँ आईं, इसका खाका पुस्तक में खींचा गया है।

लेखिका स्वीकारती हैं कि नारी के लिए गर्भ में मारे जाने से लेकर चिता की अग्नि में जलाए जाने तक अनंत यातना गृह हैं। कहीं बेटे-बेटी में विभेद की खाई है, कहीं उड़ान से पूर्व ही उसके पर कतर देने की तैयारी है, कहीं दहेज की लपलपाती लपटें हैं, कहीं माथे पर बाँझ या बेटियाँ जन्मने का कलंक है और कहीं अकेली वृद्धा की जमा-जथा हड़पने के लिए उसे ‘डायन’ करार देकर पत्थरों की मार से खत्म कर देने की साजिश है।

यह कहानी है दीपिका की। दीपिका, जिसने मनोज को समर्पण की हद तक प्रेम किया और मनोज जिसने दीपिका को हवस की हद तक इस्तेमाल किया। दीपिका, जहाँ मनोज को अपना तन-मन यह सोचकर न्योछावर करती रही कि मनोज एक दिन उससे विवाह करेगा, वही मनोज दीपिका के शरीर को अपनी जरूरत के हिसाब से जी भर इस्तेमाल करता रहा। चाहे हॉस्टल का कमरा हो अथवा जयपुर शहर, वह उसे बुलाता रहा और दीपिका अपने प्यार की एक ही आवाज पर उसके पास आती रही। सिर्फ इसलिए क्योंकि मनोज ने उससे शादी का वचन दिया था।

‘अपनी बात’ कहानी में लिखा है—“बलात्कार के आँकड़े बतलाते हैं कि नारी दिनोंदिन असुरक्षित हुई है। घर, स्कूल, सड़क, खेत-खलिहान, कहाँ पर ‘निर्भयाकांड’ नहीं होते? छह माह की दुधमुँही से लेकर 70 साल की वृद्धा भी जब महफूज न हो तो स्थिति की भयंकरता समझी जा सकती है। देह-शोषण की शिकार औरत अमूमन लोकलाज अथवा ग्लानि के चलते अपना मुँह बंद रखती है या फाँसी के फंदे पर झूल जाती है। किंतु जब किसी रेप पीड़िता के भीतर आग धधक उठती है तो वह अपने अर्द्धनारीश्वर रूप में एक मिसाल बन जाती है। नारीगत कोमलता और पौरुषेय कठोरता की धूप-छाह द्यूति एक विलक्षण आलोक-लोक सिरज देती है। यही अग्नि-राग है।

दीपिका जब बदला लेने की ठानती है तो उसके साथ प्रारंभ में सिर्फ उसकी माँ नीलिमा ही होती है। धीरे-धीरे यह कारवाँ बढ़ता चला जाता है और जब उसके साथ वह लड़की भी आ जाती है, जिसके कारण मनोज दीपिका को छोड़कर विवाह करने चला था तो कहानी में नया मोड़ आ जाता है। शुरू में ऐसा लगता है कि दीपिका द्वारा कराई गई एफ.आई.आर. और तत्पश्चात गिरफ्तारी से मनोज को सजा मिल जाएगी, लेकिन सब-कुछ इतना आसान कहाँ होता है।

उपन्यास में समाज सेविका शबाना का दीपिका के पक्ष में आना सुखद एहसास की तरह लगता है। कुछ ऐसे प्रसंग भी हैं जो मन को भिगो देते हैं। वहीं शादी से दो दिन पहले सिपाहियों का मनोज को घर से ही उठा लेना पुलिस के कर्तव्यबोध का परिचय कराता है।

पूरे उपन्यास में लेखिका ने एक-एक प्रसंग को बहुत गंभीरता के साथ पिरोया है कि उपन्यास पढ़ना आरंभ करने के बाद छोड़ा नहीं जा सकता। कहानी का ताना-बाना इस तरह बुना गया है कि रोचकता बढ़ती चली जाती है। विषय ऐसा है कि पाठकों के दिलोदिमाग में उसके आस-पास घटित किसी प्रेमप्रसंग की घटना घूमती चलती है और वह कहानी के साथ आबद्ध होता चला जाता है। सभी पात्रों की एंट्री ऐसे होती है जैसे घटना हमारे घर पर ही घटित हो रही हो। यह लेखिका की बड़ी सफलता है। कुछ वाक्य-विन्यास मन को मोह लेते हैं, जैसे—पहले ही नाखूनों में हमारे प्राण समाए हुए हैं, उस पर आपसी नोंकझोंक की कसर बाकी है क्या?

उपन्यास के समस्त पात्रों की भाषा लेखिका की अपनी भाषा है, सुसभ्य। कहीं कोई पात्र असभ्य भी हुआ तो भी भाषा में गिरावट नहीं आने दी गई। उपन्यास का यह गुण उसे प्रत्येक उम्र के पाठक के लिए पढ़ने योग्य बनाता है, वहीं उपन्यास-आलोचकों की भृकुटि तनने का भी सबब बन सकता है। फिर भी, एक बैंकर का एक डॉक्टर के साथ प्रणय और प्रतिशोध गाथा न सिर्फ सराही जाएगी, अपितु संदर्भित भी की जाएगी।

आँगन टेढ़ा

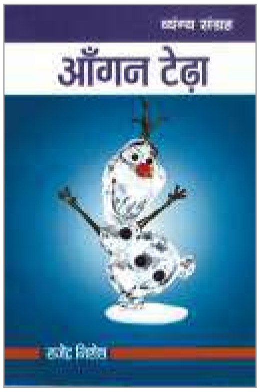

समीक्षक : **डॉ. रमेश तिवारी**

लेखक : **राजेंद्र निशेश**

प्रकाशक : वनिका पब्लिकेशंस, बिजनौर।

पृष्ठ : 112

मूल्य : रु. 190/-

व्यंग्य-संग्रह ‘आँगन टेढ़ा’ राजेंद्र निशेश का नौवाँ व्यंग्य संग्रह है। लेखक ने भूमिका के स्थान पर एक नया प्रयोग किया है। ‘समय के दर्पण में’ शीर्षक से लेखक ने वर्तमान समय के प्रति अपनी दृष्टि को लिपिबद्ध किया है, जिससे पाठकों को लेखकीय दृष्टिकोण की जानकारी मिल जाए। खास बात यह है कि इसमें विवरण में न जाकर लेखक ने बिंदुवार अपने विचारों को प्रस्तुत किया है। इनमें बाजारवाद एवं उपभोक्तावादी अपसंस्कृति, भ्रष्टाचार, काले धन का बढ़ता दायरा

एवं राजनीति में लिजलिजापन, विपरीत समय, चीजों को देखने-परखने का अपना-अपना नजरिया, मानव मूल्यों का चहुँओर क्षरण, भ्रष्टाचार, हिंसा, महँगाई एवं आतंकवाद से त्रस्त जनमानस, समय की कसौटी पर अनफिट होता लेखक, लेखकीय आचरण में बदलाव का दबाव प्रमुख है। बावजूद इसके लेखक इस मामले में बिलकुल स्पष्ट है कि वह करना क्या चाहता है? लेखक कोई उपदेशक या मार्गदर्शक नहीं बनना चाहता। वास्तव में, आज के दौर में नैतिकता की बात करना अपना अर्थ खो चुका है।

लेखक जो देखता है, उसी को कागज पर उतारना चाहता है। आम आदमी के सपनों, उसकी आशा-निराशा तथा संघर्ष करने का भाव दर्शाता है। सीधी, सहज भाषा में उन्हें इस संग्रह में प्रतिबिंबित करने का प्रयास किया गया है। इन चिंतनपरक बिंदुओं से लेखक पाठकों के साथ संपर्क स्थापित करने में पूरी तरह सफल है।

पुस्तक में 40 व्यंग्य रचनाएँ संकलित हैं। गुणवत्ता की कसौटी पर देखें तो संग्रह में अधिकतर औसत रचनाएँ हैं। 'मेरा हमशक्ल' रचना फिल्म के बहाने रचना आरंभ होती है और शीघ्र ही लेखक की दृष्टि राजनीतिक विसंगति की पहचान कराने लगती है। "उलझनें डालने के कार्य केवल राजनीति के मसीहों के जिम्मे ही नहीं हैं।" लेखक की दृष्टि राजनीति और नेताओं पर बहुत अधिक रही है। संग्रह की पहली रचना में भी एक संवाद में नेताओं का जिक्र आया है। "तुम बहुत समझदार हो हमारे नेताओं की तरह, फिर भी अभी तक किसी एक लैला को नहीं पा सके, मुझे बेहद अफसोस है।" ऐसी पंक्तियाँ रचना की व्यंजनाशक्ति और कथ्य को धार देने में प्रभावी नहीं साबित हो पाती हैं, बल्कि यह लेखकीय कमजोरी के रूप में दिखाई देती हैं। 'मेरा हमशक्ल' रचना में फिल्म के अभिनेताओं और राजनीति के अभिनेताओं में मानो होड़ लगी हुई है। 'बोरियत' भी इन फिल्मों और नेताओं के क्रियाकलापों में कम नहीं होती। फिल्मों के हमशक्ल की तरह एक चेहरे वाले दो शख्स अलग-अलग गुण वाले भी होते हैं। हालाँकि, इस रचना में कोई ऐसा कथ्य नहीं निकलकर आता है, जो रचना को कथ्य की दृष्टि से व्यंग्य की श्रेणी में फिट कर सके। इस संग्रह की शीर्षक रचना को लेखक ने लघु नाटिका के रूप में प्रस्तुत किया है। हालाँकि, पूरी रचना में कोई ऐसा विशेष कथ्य व्यंजित नहीं हो रहा है। बस ले-देकर वही एक बात है कि "टेढ़े आँगन को सीधा करना इतना आसान नहीं, जैसे टेढ़े नेताओं की दुम कुत्ते की दुम की तरह होती है।" इस प्रसंग में आँगन के साथ नेता और नेता के साथ कुत्ते की दुम का संबंध तो जोड़ लिया गया, किंतु इस पूरे प्रसंग की निर्मिति का उद्देश्य एवं प्रासंगिकता स्पष्ट नहीं की गई है। इन कारणों से रचना का कथ्य और लेखन का उद्देश्य धूमिलप्राय है। इसमें दो कथन हैं। एक, "परिस्थितियों की लय पर सभी को नाचना पड़ता है। जिंदगी का दर्शन-शास्त्र ही कुछ ऐसा है।" और दूसरा, "कुछ अनाड़ी किस्म के लोग तो सीधे आँगन में भी नाच नहीं पाते, इनका क्या?" पहले कथन में परिस्थिति की महत्ता को उजागर किया गया है, किंतु इस कथन के औचित्य को स्पष्ट नहीं किया गया है। दूसरे कथन में, अनाड़ी किस्म के लोगों पर लक्ष्य किया गया है। व्यवस्था में विसंगति का दारोमदार कमजोर के मुकाबले ताकतवर पर अधिक होता है। अतः नियामक अथवा ताकतवर शक्तियों को लक्षित किया जाता तो कहीं अधिक बेहतर होता।

निठल्लों का औजार सोशल मीडिया

समीक्षक : **डॉ. रमेश तिवारी**
लेखक : **राजशेखर चौबे**
प्रकाशक : वंश पब्लिकेशन, भोपाल।
पृष्ठ : 122
मूल्य : रु. 250/-

वर्तमान परिदृश्य में साहित्यिक विधाओं में परिस्थितियाँ व्यंग्य सृजन के लिए सर्वाधिक अनुकूल हैं। यही कारण है कि आज हमारे इर्द-गिर्द व्यंग्य का भरपूर लेखन-प्रकाशन हो रहा है। हालाँकि, व्यंग्य की बढ़ती आमद में गुणवत्तापूर्ण या सरोकारों की कसौटी पर खरे व्यंग्यों की संख्या बहुत संतोषजनक नहीं है। फिर भी सरोकारों को केंद्र में रखकर लिखने वाले लेखक अभी पूरी तरह लुप्त नहीं हुए हैं। ऐसे रचनाकारों में राजशेखर चौबे का नाम लिया जा सकता है। 'निठल्लों का औजार सोशल मीडिया' राजशेखर चौबे का तीसरा व्यंग्य संग्रह है।

लेखक का सामाजिक सरोकार, उसकी रुचि और विशेषज्ञता का क्षेत्र लेखन में दिखाई पड़ता है। आर्थिक मुद्दों पर लेखक की स्पष्ट दृष्टि और विशेषाधिकार का साक्षात्कार कराती रचनाओं में 'जीडीपी में ग्रोथ-ही-ग्रोथ', 'अन्नदाता का दर्द' आदि रचनाओं को विशेष रूप से पढ़ने की आवश्यकता है। 'अंकल सैम से अंकल शेम' व्यंग्य रचना व्यापक अंतरराष्ट्रीय घटनाक्रम से जन्मी विसंगतियों से पाठकों का साक्षात्कार कराती है। अमेरिका में अंकल सैम की विरासत की परिणति के रूप में पूर्व अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प की गतिविधियों से जोड़कर अंकल शेम के रूप में व्यंग्यात्मक प्रस्तुति की गई है। लेखक की खूबी यह है कि अंतरराष्ट्रीय मुद्दे तक पहुँचने के पूर्व भी वह अपने आस-पड़ोस से ही पहले रचना का कच्चा माल लेता है। उसके बाद एक तादात्म्य बिठाते हुए अपने उद्देश्य के अनुरूप उन विसंगतियों की रचनात्मक प्रस्तुति करता है।

'कोरोना' नामक वैश्विक महामारी के प्रभाव को दर्शाती रचनाओं में गहन मानवीयता के बिंदु हैं। इस संग्रह में कई ऐसी

रचनाएँ हैं जो सीधे-सीधे कोरोना से संबंधित हैं। 'जान तो है ही पर वुहान भी है, कोरोना एक आपदा, कोरोना पर एक निबंध, कोरोना से मरो न, प्यार की राह में रोड़ा कोरोना, बाकी सब ठीक है, अभागे भाई का पत्र आदि रचनाएँ इस संदर्भ में विशेष रूप से पठनीय हैं।

एक प्रमुख रचना है—'बाकी सब ठीक है'। हम लोग इस वाक्य का प्रयोग प्रायः बातचीत में करते हैं। तब भी करते हैं जब वास्तव में कुछ भी ठीक होता नहीं है। इस मानवीय विसंगति को लेखक ने इस रचना में बहुत बारीकी से उठाया है। लेखक के पास व्यापक अनुभव फलक है, जो उसे अतीत के साथ वर्तमान को तुलनात्मक और तार्किक ढंग से देखने-समझने की शक्ति देता है। "15-20 दिन यही स्थिति रही तो मुझे अपने हजारों साथियों के साथ आपके पास आना ही पड़ेगा और तभी मैं आपको यह पत्र सौंप दूँगा। वहाँ आकर मैं यह जरूर जानना चाहूँगा कि क्या 20 लाख करोड़ के पैकेज के बावजूद मेरे साथियों को उनके घरों तक सही सलामत पहुँचाया जा सका? तो फिलहाल आप यही जान लें कि बाकी सब ठीक ही है और न भी हो तो सब ठीक-ठाक कर लिया जाएगा।"

इसी प्रकार एक अन्य रचना है, जिसका शीर्षक है—सबसे बड़ा गिद्ध। इस रचना का आरंभ आम आदमी की एक मानसिक कमजोरी से किया गया है। "मैं एक आम आदमी हूँ, मेरे योगदान से ही देश चलता है, क्योंकि मैं आई.टी. भरता हूँ और आई.टी. सेल से आए हुए सभी संदेशों को यह जानते हुए भी कि उनमें से अधिकांश फेक हैं, 15-20 ग्रुप में भेज देता हूँ।" सामाजिक परिवर्तन की दशा-दिशा पर लेखक की बहुत सूक्ष्म पकड़ है। इसे समझने के लिए यह उद्धरण देखें—"हमारे जमाने में यूपीएससी की परीक्षा देना और असफल होना नेशनल हॉबी थी। आजकल व्हाट्सएप पर फेक मैसेज फॉरवर्ड करना नेशनल हॉबी है।" हम सबका अनुभव कमोबेश ऐसा ही है। इस दृष्टि से संग्रह की बहुत-सी रचनाएँ पठनीय हैं और विचारणीय भी।

युवा लेखकों के लिए प्रधानमंत्री की मेंटरशिप योजना–2.0

युवा लेखन प्रतिभाओं को आगे लाने के प्रयास के तहत अति महत्वाकांक्षी योजना 'प्रधानमंत्री मेंटरशिप युवा योजना' का प्रथम संस्करण सफल रहा। यह हर्ष का विषय है कि इस योजना का द्वितीय संस्करण भी शुरू हो गया है। इस योजना में भाग लेने के लिए 30 वर्ष से कम आयु के युवा अपने प्रस्ताव 02 अक्तूबर, 2022 से 30 नवंबर, 2022 तक भेज सकते हैं। इस वर्ष का केंद्रीय विषय है—लोकतंत्र (संस्थाएँ, घटनाएँ, व्यक्तित्व, संवैधानिक मूल्य)।

ध्यातव्य है कि इस योजना का पहला संस्करण मई-2021 में शुरू किया गया था। इसमें संवैधानिक दर्जा प्राप्त सभी 22 भाषाओं में बड़े पैमाने पर प्रस्ताव प्राप्त हुए। जाँच के कई मानकों से गुजरते हुए 75 लेखकों की रचनाओं को चयनित किया गया। उन्हें मेंटर्स ने तराशा और उनके लेखन को नए पंख दिए। एक तरफ जहाँ प्रतिभागियों को सफल मार्गदर्शन मिला, वहीं लेखकों ने शोध के जरिए अपनी पुस्तक को नया आयाम दिया। प्रथम संस्करण का केंद्रीय विषय था—भारत का राष्ट्रीय आंदोलन।

पीएम-युवा 2.0 मेंटरशिप योजना के अंतर्गत अखिल भारतीय प्रतियोगिता के माध्यम से 30 वर्ष से कम आयु के युवा लेखकों के लिए छात्रवृत्ति-सह-परामर्श योजना हेतु 75 लेखकों का चयन किया जाना है। इसका आयोजन MyGov और राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के माध्यम से किया जाएगा। भारत में लोकतंत्र के विकास की अवधारणा और इसे व्यापक रूप से समझने के लिए संविधान, महिला, युवा, धर्म, इतिहास, मानवाधिकार, शिक्षा, राष्ट्रवाद, संस्कृति आदि जैसे विभिन्न उपशीर्षकों के तहत इसका अध्ययन करने की आवश्यकता है, जो कि पीएम-युवा 2.0 मेंटरशिप योजना का प्राथमिक उद्देश्य होगा। अखिल भारतीय प्रतियोगिता के द्वारा लेखकों का चयन https://www.nbtindia.gov.in के माध्यम से किया जाएगा।

प्रतियोगिता में भाग लेने के लिए युवा लेखकों को 10,000 शब्दों का पुस्तक प्रस्ताव भेजना होगा, जिसमें दो-तीन हजार शब्दों की रूपरेखा, अध्याय योजना, सात-आठ हजार शब्दों का अध्याय नमूना व ग्रंथ सूची और संदर्भ भेजना होगा। प्रस्ताव कथेतर होना चाहिए। प्रस्ताव प्राप्त होने पर उनका मूल्यांकन किया जाएगा। उल्लेखनीय है कि जो लेखक प्रथम संस्करण में अंतिम रूप से चयनित हुए थे, वे इस प्रतियोगिता में प्रतिभाग नहीं ले पाएँगे।

इन चयनित लेखकों को छह महीने की मेंटरशिप दी जाएगी जिसमें उन्हें प्रख्यात लेखकों और राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत की संपादकीय टीम के मार्गदर्शन में अनुसंधान और संपादकीय सहायता प्रदान की जाएगी, जिससे उनके पुस्तक प्रस्तावों को पूर्ण पुस्तकों के रूप में प्रकाशित किया जा सके। आजादी का अमृत महोत्सव पहल के हिस्से के रूप में न्यास उनकी प्रकाशित पुस्तकों का बाद में अन्य भारतीय भाषाओं में भी अनुवाद करेगा। मेंटरशिप के दौरान, चयनित लेखकों को छह महीने की अवधि के लिए प्रति माह 50,000 रुपये की छात्रवृत्ति मिलेगी।

नमामि गंगे परियोजना के साथ बहेगी ज्ञान गंगा

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत (शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार) द्वारा शुरू की गई सचल पुस्तक प्रदर्शनी पहली बार गंगा नदी के किनारे स्थित सभी प्रमुख शहरों, कस्बों और बस्तियों से गुजरते हुए लगभग 2500 किलोमीटर की यात्रा तय करेगी। यह गंगा पुस्तक परिक्रमा 81 दिनों की लंबी यात्रा पर गंगोत्री से शुरू हुई। इस यात्रा में लगभग डेढ़ लाख बच्चे और युवा रचनात्मक लेखन, रीडिंग, पेंटिंग, कार्यशालाओं, चर्चाओं जैसी गतिविधियों के माध्यम से जुड़ेंगे और हमारे जीवन पर गंगा के सांस्कृतिक और पर्यावरणीय पहलुओं के प्रति जागरूक होंगे।

गंगा के पवित्र जल ने ऋषियों, दार्शनिकों, लेखकों और कलाकारों को प्रेरित कर भारत के करोड़ों लोगों की सामूहिक मानसिकता में अपनी दिव्य छवि को अमर कर दिया है। यह सचल पुस्तक प्रदर्शनी गंगा से प्रेरित श्रेष्ठ साहित्यिक रचनाओं को कथा वाचन एवं परिचर्चाओं द्वारा जीवंत करने का प्रयास करेगी। यह गंगा नदी के आस-पास रहने वाले लेखकों की साहित्यिक धरोहरों से होकर भी गुजरेगी। गंगा के जल जीवों पर रचनात्मक लेखन को न्यास आमंत्रित करेगा और इसे बच्चों के लिए किताबों के रूप में प्रकाशित करेगा। गंगा पुस्तक प्रदर्शनी ऋषिकेश, हरिद्वार, बिजनौर, मेरठ, अलीगढ़, फर्रुखाबाद, कानपुर, प्रयागराज, मिर्जापुर, वाराणसी, छपरा, पटना, बेगूसराय, सुल्तानगंज, भागलपुर, साहिबगंज, बहरामपुर, कोलकाता से होकर 22 दिसंबर, 2022 को हल्दिया में अपनी यात्रा समाप्त करेगी।

इस पुस्तक प्रदर्शनी में हिंदी, अंग्रेजी, संस्कृत और उर्दू में विभिन्न आयु वर्ग हेतु पुस्तकों के अलावा गंगा और भारतीय नदियों और जल निकायों के आस-पास विकसित पारिस्थितिकी तंत्र पर पुस्तकें प्रदर्शन एवं विक्रय के लिए उपलब्ध हैं।

बाल साहित्य पर कार्यशाला आयोजित

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत ने 'रूम टू रीड इंडिया' के संयुक्त तत्वावधान में 22 सितंबर को बाल साहित्य पर एक कार्यशाला का आयोजन किया। यह कार्यशाला न्यास मुख्यालय, नई दिल्ली में आयोजित की गई। कार्यशाला का केंद्रीय विषय था 'बाल साहित्य में सर्वोत्तम कार्य'। इसमें कहानी, चित्र, डिजाइन और लेआउट, विविधता के माध्यम से समावेश आदि विभिन्न पहलुओं पर चर्चा की गई। इस अवसर पर न्यास-निदेशक श्री युवराज मलिक ने बाल साहित्यकारों को संबोधित करते हुए नई शिक्षा नीति के अनुरूप बाल साहित्य के प्रोन्नयन पर चर्चा की।

द्वितीय अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास

द्वितीय अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन सूरत (गुजरात) में 14 से 15 सितंबर, 2022 को राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा पुस्तक प्रदर्शनी लगाई गई। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि श्री अमित शाह, माननीय गृह एवं सहकारिता मंत्री; विशिष्ट अतिथिगण श्री भूपेंद्र भाई पटेल, माननीय मुख्यमंत्री, गुजरात सरकार; माननीय अतिथिगण श्री अजय कुमार मिश्रा, माननीय गृह राज्य मंत्री; श्री निशीथ प्रमाणिक, गृह मंत्रालय और युवा मामले और खेल मंत्रालय एवं श्री आर.के. रंजन सिंह, माननीय राज्य मंत्री शिक्षा मंत्रालय ने न्यास के स्टाल में प्रदर्शित पुस्तकों का अवलोकन किया और हिंदी के प्रचार-प्रसार तथा ज्ञानवर्धित समाज को बढ़ावा देने के लिए न्यास के प्रयासों की सराहना की। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के निदेशक श्री युवराज मलिक ने अतिथियों को पुस्तकें भेंट कीं। इस अवसर पर न्यास के उपनिदेशक श्री राकेश कुमार भी उपस्थित थे।

न्यास परिसर में छात्रों ने किया रचनात्मक कार्य

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत में सांता मारिया इंटीग्रेटेड लर्निंग एनवायरनमेंट, वसंत कुंज के प्री-प्राइमरी के छात्र आए। इस दौरान डॉ. जयश्री सेठी ने संवादात्मक कहानी सुनाने का सत्र आयोजित किया। इसी क्रम में माउंट आबू स्कूल, रोहिणी के बच्चे भी न्यास आए और उन्होंने कहानी सुनाने के सत्र के साथ-साथ एक रचनात्मक ड्राइंग कार्यशाला में भाग लिया। इसके अलावा आर्मी पब्लिक स्कूल, दिल्ली कैंट के छात्रों ने भी न्यास में आयोजित किस्सागोई और रचनात्मक लेखन सत्र में भाग लिया। इसके बाद बच्चे न्यास स्थित राष्ट्रीय बाल साहित्य केंद्र व पुस्तक विक्रय केंद्र भी गए और उन्होंने अपनी पसंद की पुस्तकें खरीदीं।

प्रेम से ही देश है और साहित्य ही प्रेम का पर्याय है—प्रो. संजय द्विवेदी

“प्रेम हमारी आवश्यकता है। हम सब उसे पाना चाहते हैं, लेकिन उससे पहले हमें प्रेम को देना सीखना होगा क्योंकि प्रकृति का नियम है जो देता है, उसे ही मिलता है। हिंदुस्तान में जो देता है, उसे 'देवता' कहते हैं इसीलिए जो हम देंगे, वही लौटकर आएगा। यदि हम साहित्य में प्रेम और सद्भावना देंगे तो पाठकों के मन में भी वैसी ही भावना विकसित होगी”। ये उद्गार थे भारतीय जनसंचार संस्थान, नई दिल्ली के महानिदेशक प्रो. संजय द्विवेदी के। वे राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा आयोजित गाज़ियाबाद में संपन्न विचार गोष्ठी में अध्यक्षीय आसंदी से बोल रहे थे, जिसका केंद्रीय विषय था—भारतीय भाषा साहित्य में प्रेम और सद्भावना के प्रसंग। आयोजन भागीरथ पब्लिक स्कूल के सभागार में संपन्न हुआ।

डॉ. अमरसिंह वधान, चंडीगढ़ ने शेक्सपियर के साहित्य से लेकर पंजाबी साहित्य सामग्री पर विवेचन प्रस्तुत करते हुए बताया कि पंजाबी भाषा का संबंध वेद-भाषा से है। उन्होंने कहा, “यदि वैश्विक परिदृश्य पर ध्यान दिया जाए तो सृष्टि का हर आदमी प्रेम और सद्भावना का भूखा है। प्रेम मनुष्य की ऑक्सीजन है, सद्भावना मानव साँसों की बहती नदी है। हमारे दो ध्रुव हैं—हृदय और मस्तिष्क, लेकिन हृदय मस्तिष्क से ज्यादा महत्वपूर्ण है। इस अवसर पर गिरिडीह से आई हिंदी और बांग्ला की विदुषी डॉ. ममता बनर्जी ने कहा कि भारत की साहित्यिक पहचान में बांग्ला साहित्य का विशेष योगदान है। उन्होंने चैतन्य महाप्रभु की रचनाओं में प्रेम प्रसंग से लेकर बंगाली साहित्य के दिग्गजों की रचनाओं में भी प्रेम व सद्भावना के प्रसंगों के उदाहरण प्रस्तुत किए।

पूर्वोत्तर हिंदी परिषद के प्रमुख डॉ. अकेला भाई ने हिंदी और उर्दू भाषा की रचनाओं में प्रेम और सद्भावना के प्रसंगों पर कहा, “मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और बिना प्रेम और सद्भावना हम सामाजिक नहीं बन सकते। प्रेम और सद्भावना को घर-घर तक पहुँचाने का कर्तव्य हर रचनाकार निभाता है।” एच.एस.एस.सी. इंडिया के राजभाषा अधिकारी प्रमोद कुमार ने इस अवसर पर हिंदी को सरकारी कामकाज में ज्यादा-से-ज्यादा उपयोग में लाने पर जोर दिया। इस कार्यक्रम का संचालन राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के हिंदी भाषा के संपादक श्री पंकज चतुर्वेदी ने किया।

हिंदी दिवस पर व्याख्यान

“मनुष्य ने बहुत मुश्किल से अपनी भाषा खोजी, शब्दों का सृजन किया और उनको व्यक्त करने के लिए नए-नए रूप गढ़े। भाषा न होती तो संसार कैसा होता।” उक्त उद्गार हिंदी भाषा के प्रख्यात विद्वान एवं हंसराज महाविद्यालय के सहायक प्रोफेसर (हिंदी) डॉ. प्रभांशु ओझा ने व्यक्त किए। वे हिंदी दिवस के अवसर पर संबोधित कर रहे थे। व्याख्यान का केंद्रीय विषय था—स्वतंत्रता संग्राम और स्वतंत्र भारत में संपर्क भाषा एवं जनभाषा के रूप में हिंदी की भूमिका तथा वैश्विक संदर्भ में हिंदी—चुनौतियाँ और संभावनाएँ।

श्री ओझा ने कहा कि हम भाषा से दूर कर दिए जाएँ तो यह चिंता का विषय है। स्वतंत्रता संघर्ष में पूरा देश एक हुआ तो उसकी संपर्क भाषा हिंदी ही थी। दो अहिंदी भाषी प्रदेश के लोग हिंदी में ही वार्ता करते रहे हैं। ऐसा कहा जाता है कि हिंदी क्षेत्रीय बोलियों के लिए खतरा है, लेकिन ऐसा नहीं हैं। हिंदी जोड़ने का कार्य करती रही है, न कि तोड़ने का। भाषाविहीन समाज निश्चित रूप से भटकेगा। हमें इसका व्यावहारिक रास्ता खोजना होगा। हिंदी में अन्य भाषाओं की संभावना है। जिसमें सृजन नहीं है, वह भाषा नहीं बन सकती। आने वाले समय में जो त्रासदी होगी वह भाषा की होगी। अधिकतम भाषा और लिपि देवनागरी होनी चाहिए। इससे देश एकता के सूत्र में बँधेगा।

इस अवसर पर न्यास की मुख्य संपादक व संयुक्त निदेशक श्रीमती नीरा जैन ने कहा कि हम हिंदी का मातृभाषा के रूप में प्रोन्नयन कर रहे हैं। इसके अलावा हम सभी संवैधानिक दर्जा प्राप्त भाषाओं सहित 50 से अधिक भाषाओं में पुस्तकें प्रकाशित कर रहे हैं। न्यास के हिंदी अधिकारी नागेंद्र शर्मा ने अतिथि को धन्यवाद ज्ञापित किया। संचालन न्यास के उपनिदेशक श्री राकेश कुमार ने किया।

साहित्य अकादेमी पुरस्कार के लिए सम्मानित

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के तेलुगू भाषा के सहायक संपादक डॉ. पत्तीपाक मोहन को साहित्य अकादेमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। यह पुरस्कार उन्हें 'बालला ताता बापूजी' कृति के लिए दिया गया है। पुरस्कार प्राप्ति के लिए उन्हें न्यास की ओर से सम्मानित किया गया। इस अवसर पर न्यास-अध्यक्ष प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा ने पुस्तक गुच्छ और शॉल देकर उन्हें सम्मानित किया। उनकी अब तक 11 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

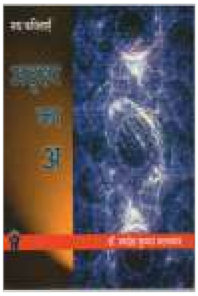

अदृश्य का अ

(गद्य कविताएँ)

डॉ. स्वदेश कुमार भटनागर

यह पुस्तक 90 गद्य कविताओं का संकलन है। वर्तमान समाज के खोखलेपन से प्रक्षुब्ध होकर इन कविताओं का रुख आत्मचिंतन की ओर है। विलक्षण बिंब वाली इन कविताओं में ऐसा जादुई प्रभाव है जो सहज मानव मन को भीतर तक मथती हैं। ये रचनाएँ ईश्वर और उसकी दिव्यता से इतर मानवीय अस्मिता की कविताएँ हैं।

प्रकाश बुक डिपो, बरेली।

पृ. 176; रु. 751.00

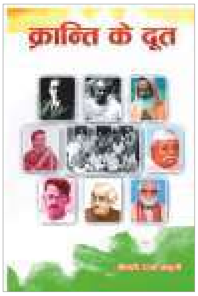

क्रांति के दूत

रत्ना बापुली

यह पुस्तक 16 अध्यायों में विभाजित है। इस पुस्तक में प्रथम दो लेख गुमनाम क्रांतिकारी नित्यानंद चटर्जी पर आधारित हैं, लेकिन इनके साथ-साथ कुछ अन्य क्रांतिकारियों का भी संक्षिप्त परिचय अन्य अध्यायों में दिया गया है। समग्र रूप में यह पुस्तक क्रांतिकारियों के जीवन से अनभिज्ञ व्यक्ति को एक साधारण परिचय करा देती है।

सुलभ प्रकाशन, लखनऊ।

पृ. 54; रु. 100.00

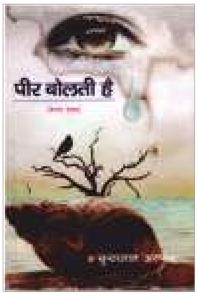

पीर बोलती है

(काव्य-संग्रह)

सुन्दरलाल 'अरुणेश'

यह पुस्तक 41 गीतों का संकलन है। वियोग-शृंगार के ये प्रणय-गीत पाँच दशकों में लिखे गए हैं। इनमें कुछ गीत शृंगारपरक होने के साथ-साथ द्वैताद्वैतवादी दार्शनिक और आध्यात्मिक भावभूमि से जुड़े हैं। इन गीतों को आम बोलचाल की जीवंत भाषा में लिखा गया है, जिनका हृदय पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है।

पुस्तकालय पब्लिकेशन, लखनऊ।

पृ. 90; रु. 150.00

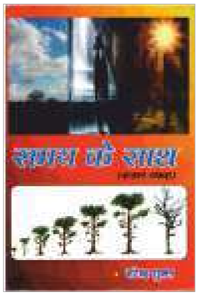

समय के साथ

(ग़ज़ल-संग्रह)

नरेन्द्र शुक्ल

यह पुस्तक 76 ग़ज़लों का संकलन है। ये ग़ज़ल वर्तमान संदर्भों की रूपरेखा का विश्वसनीय दस्तावेज हैं। इनके विषय मानव मन की स्थितियों, जीवन की परिस्थितियों की उपज हैं। कई ग़ज़लें आध्यात्मिकता को ध्यान में रखकर भी लिखी गई हैं। ऐसी ग़ज़लों में व्यक्ति को प्रेरित करने का संदेश निहित है।

उद्योग नगर प्रकाशन, गाजियाबाद।

पृ. 128; रु. 200.00

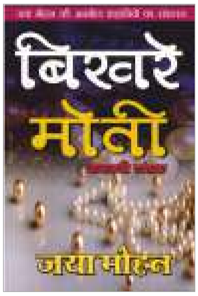

बिखरे मोती

(कहानी संग्रह)

जया मोहन

यह पुस्तक छह कहानियों का संकलन है। इन कहानियों में हैं—गरल-पान, मुक्ति, संयोग, रम्मो बुआ, नफरत और लंबी जुदाई। इन कहानियों के कथानक सामान्य मनुष्य के दैनंदिन परिवेश से लिए गए हैं। ये कहानियाँ समाज में फैली कुप्रथाओं पर भी प्रकाश डालती हैं। साथ ही ये कहानियाँ प्रेम, निष्ठा, संवेदना, त्याग जैसे भावों को परिभाषित करती हैं।

दीक्षा प्रकाशन, दिल्ली।

पृ. 88; रु. 200.00

उद्गार : मनोदर्पण की परछाइयाँ

(काव्य-संग्रह)

विश्वामित्र भण्डारी

यह कृति 75 कविताओं का संकलन है, जिसमें साधारण जीवन का यथार्थ बताया गया है। इन कविताओं में व्यक्तिगत, सामाजिक, व्यावहारिक, राष्ट्रीय, साहित्यिक एवं मनोवैज्ञानिक स्तर के विचारों को अभिव्यक्ति मिली। ये कविताएँ जीवन के अनेक रूप व चरित्र की व्याख्या करती हुई मनुष्य के विचार, राग-विराग, लालसाएँ और आकांक्षाओं को व्यक्त करती हैं।

व्हाइट फैल्कन पब्लिशिंग, चंडीगढ़।

पृ. 75; रु. 180.00

रंगों में रंगा...प्रेम रंग

(काव्य-संग्रह)

मोहन सपरा

यह पुस्तक 37 प्रेम कविताओं का संकलन है। ये कविताएँ समाज-निरपेक्ष नहीं हैं, बल्कि ये खुले मन की समाज-सापेक्ष कविताएँ हैं। अलौकिक प्रेम के विपरीत इन कविताओं में लोक का सार्वभौमिक प्रेम अभिव्यक्त हुआ है। प्रेम को परिभाषित करते हुए उसे इतना विशाल एवं विराट बना दिया गया है कि उनकी दृष्टि में संपूर्ण सृष्टि ही प्रेममयी हो गई है।

आस्था प्रकाशन, नई दिल्ली।

पृ. 103; रु. 295.00

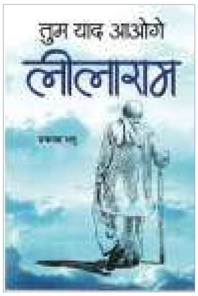

तुम याद आओगे लीलाराम

(कहानी-संग्रह)

प्रकाश मनु

इस संग्रह में कुल 12 कहानियाँ संकलित हैं। ये कहानियाँ बिलकुल अलग ढंग की कथन-शैली और गहरी मर्म पुकार लिए हुए हैं, जो कि अद्भुत किस्सागोई और अनौपचारिक लहजे के कारण अलग पहचान बनाती हैं। इन्हें पढ़ते हुए पाठक खुद को अपनी तकलीफों, समूची वेदनाओं और आत्मिक द्वंद्वों के साथ खड़ा पाता है।

ज्ञान विज्ञान एजूकेयर, नई दिल्ली।

पृ. 176; रु. 350.00

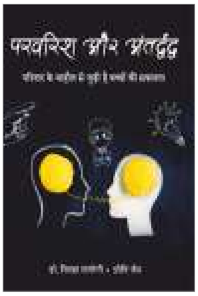

परवरिश और अंतर्द्वंद्व

डॉ. शिखा रस्तोगी, प्रीति जैन

यह पुस्तक बच्चों की सफलता में परिवार के माहौल का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करती है। पुस्तक लेखिका के प्रिंसिपल और सीबीएसई की हेल्पलाइन काउंसलर के तौर पर 35 वर्ष के अनुभवों का परिणाम है। पुस्तक में उल्लिखित अनुभवजनित तरीके बच्चों के लिए प्रभावशाली और अभिभावकों के लिए सहयोगात्मक सिद्ध हो सकते हैं।

इंद्रा पब्लिशिंग हाउस, भोपाल।

पृ. 98; रु. 125.00

अरावली का मार्तण्ड

(महाराणा प्रताप की महागाथा)

प्रताप नारायण सिंह

यह उपन्यास महाराणा प्रताप के जीवन पर आधारित है। इस पुस्तक में राणा प्रताप के संपूर्ण जीवन और व्यक्तित्व को दर्शाया गया है। उनके जीवन से जुड़े अज्ञात, लेकिन रोचक तथ्य पाठक को चमत्कृत और रोमांचित करने वाले हैं। उनके जन्म, लालन-पालन, राजतिलक, राजधानी, संघर्ष तथा देहावसान तक का संपूर्ण उद्घाटन इस उपन्यास में हुआ है।

डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि., नई दिल्ली।

पृ. 240; रु. 300.00

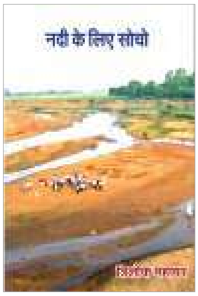

नदी के लिए सोचो

(काव्य-संग्रह)

त्रिलोक महावर

यह पुस्तक 29 कविताओं का संकलन है, जो नदी के बढ़ते संकट को संवेदनात्मक रूप में प्रस्तुत करती है। जल-संकट के दिनोंदिन बढ़ते रहने से ये कविताएँ और प्रासंगिक हो गई हैं। बेतवा और इंद्रावती नदी की दुबली होती धारा और दुनियाभर की नदियों की बदहाली पर कवि का गहन चिंतन कविताओं में दिखाई देता है।

सृजन बिंब प्रकाशन, नागपुर।

पृ. 48; रु. 100.00

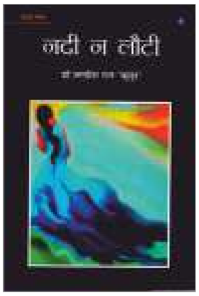

नदी न लौटी

(हाइकु-संग्रह)

डॉ. जगदीश पन्त 'कुमुद'

यह पुस्तक 300 हाइकु रचनाओं का संग्रह है। काव्य के इस लघु रूप (हाइकु) में प्रेम, रिश्ते-नाते, प्रकृति, दर्शन के गहरे भावबोध और रचनात्मकता की अभिव्यक्ति हुई है। ये हाइकु साधना की परतों से छनकर निकले हैं, इसीलिए ये आमजन के निकट ठहरते हैं।

समय साक्ष्य, देहरादून।

पृ. 94; रु. 125.00

RNI NO. DELHIN / 2016 / 68219

मनोरंजन, ज्ञान और जिज्ञासा की अनूठी दुनिया!

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के कुछ नए प्रकाशन

गुरु रविदास

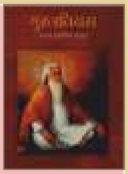

आचार्य पृथ्वीसिंह आजाद

यह पुस्तक गुरु रविदास के जीवन, उनकी वाणी की विशेषताओं, विचारधारा, भक्ति-भावना, भक्ति-साधना तथा उनके समाज की देन को चित्रित करती है। उनकी वाणी के कुछ पदों का संकलन इस पुस्तक में किया गया है। गुरु रविदास की प्रशस्ति निराश, दलित, पीड़ित वर्ग में नवजीवन और आशा जगाने के कारण है।

पृ. 94; रु. 85.00

स्वामी दादू दयाल

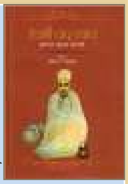

झमटमल खूबचंद भावनाणी

अनुवाद : **मोतीलाल जोतवाणी**

दादू दयाल निर्गुण पंथ के संत कवि थे। यह पुस्तक उनके जीवन, शिष्य कवि, सिंधी साखियों, सिंधी काफ़ियाँ (पद) का विश्लेषण करती चलती है। दादू दयाल के समकालीन एवं ऐतिहासिक भक्त-कवियों से उनके संबंधों एवं प्रभाव का विवेचन भी इस पुस्तक में किया गया है। साथ ही, उनकी कुछ राजस्थानी साखियों और कुछ सिंधी बैत का संकलन भी पुस्तक में हुआ है।

पृ. 80; रु. 85.00

सरदार वल्लभभाई पटेल

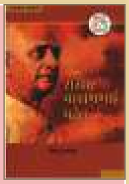

विष्णु प्रभाकर

इस पुस्तक में सरदार पटेल के जीवन के कुछ ज्ञात-अज्ञात पक्षों का उद्घाटन रोचक भाषा-शैली में किया गया है। 13 अध्यायों में विभाजित यह पुस्तक पटेल के व्यक्तित्व को पाठक के मानस पर साकार कर देती है। आजादी के बाद देश को एकता के सूत्र में पिरोने वाले पटेल का चरित्र इस पुस्तक में बखूबी उकेरा गया है।

पृ. 92; रु. 105.00

रामलिंग

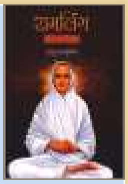

कवि एवं पैगंबर

पुरसु बालकृष्णन

महात्मा गांधी, अरविंद तथा रमण महर्षि के आध्यात्मिक अग्रवर्ती रामलिंग स्वामी का वर्णन इस पुस्तक में किया गया है। वे आधुनिक तमिल पुनर्जागरण के अग्रदूत थे। 22 अध्यायों में विभाजित यह पुस्तक उनके जन्म से लेकर मृत्यु तक की यात्रा को वर्णित करती है। उनके लेखन का प्रभाव अग्रगण्यों पर कैसा पड़ा, इसका सुस्पष्ट परिचय इस पुस्तक से हो जाता है।

पृ. 118; रु. 110.00

सूरदास

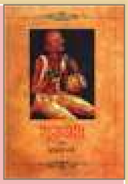

व्रजेश्वर शर्मा

यह पुस्तक सूरदास के जीवन से गुजरते हुए उनके काव्य-संसार से अवगत कराती है। साथ ही, नेतृत्वकालीन परिस्थितियों के आलोक में युगबोध को भी पाठकों के समक्ष रखा गया है। 10 अध्यायों में विभाजित इस पुस्तक में उनके प्रशस्ति प्राप्त पदों का भी संकलन किया गया है।

पृ. 124; रु. 180.00

रमण महर्षि

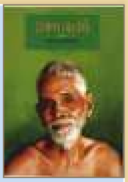

कृष्ण स्वामीनाथन

14 अध्यायों की यह पुस्तक रमण महर्षि के प्रेरणास्पद व्यक्तित्व से परिचय कराती है। यह पुस्तक चरितामृत एवं वचनामृत दो भागों में रमण महर्षि के जीवन-जगत् तथा रचना-संसार को बखूबी रखती है। उनकी आत्मज्ञान की साधना-पद्धति आज के क्षुब्ध एवं संत्रस्त मानव के लिए एक संतोषप्रद उपचार के रूप में दिखाई देती है। उनकी चयनित वाणी को भी पुस्तक में स्थान दिया गया है।

पृ. 166; रु. 240.00

चैतन्य

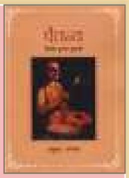

दिलीप कुमार मुखर्जी

अनुवाद : **कमलेश**

छह अध्यायों में विभाजित यह पुस्तक मध्यकालीन परिस्थितियों में चैतन्य महाप्रभु की ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक एवं साहित्यिक प्रभाव को समग्रता में रखती है। पुस्तक से गुजरते हुए पाठक उनके आध्यात्मिक संसार से सीधे परिचय प्राप्त करता है। साथ ही बंगाल, उड़ीसा क्षेत्र में उनकी ऐतिहासिक उपस्थिति की महत्ता भी रेखांकित करता है।

पृ. 116; रु. 95.00

nbt.india
एकः सूते सकलम्

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत

शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070.

फोन : 011-26707761 ● **ई-मेल** : nro.nbt@nic.in

वेबसाइट : www.nbtindia.gov.in